पुस्तक
आगम और व्याख्या-साहित्य

लेखक
विजय मुनि शास्त्री साहित्यरत्न
मुनि समदर्शी प्रभाकर

प्रकाशक
सन्मति ज्ञान-पीठ आगरा

मुद्रक
एजुकेशनल प्रेस आगरा

प्रथम प्रवेश
२१ जनवरी १९६४

मूल्य
एक रुपया पच्चीस नये पैसे

विषय-परिच्चय

आगम-साहित्य एक अनुचिन्तन

आगम-साहित्य · एक अनुचिन्तन

मुनि समदर्शी प्रभाकर

आगम-साहित्य

भारतीय-सस्कृति के विचारको एव चिन्तको ने आत्मा परमात्मा एव विश्व के सम्बन्ध में गहन चिन्तन-मनन और अन्वेषण किया है। और इस खोज मे उन्होंने जो कुछ पाया और आत्म-विकास एव आत्म-शुद्धि के लिए जो यथार्थ मार्ग देखा-समझा उसे अपने शिष्य-प्रशिष्यो को सिखाकर उस ज्ञान धारा को अनवरत प्रवहमान रखने का प्रयत्न किया। इस ज्ञान परम्परा को भारतीय-सस्कृति मे 'श्रुत या श्रुति' कहते है। 'श्रुत' शब्द का अर्थ है—सुना हुआ और 'श्रुति' शब्द का अभिप्राय है—सुनी हुई।

जैन-परम्परा की मान्यता है कि तीर्थंकर केवल ज्ञान सप्राप्त करने के बाद प्रवचन देते हैं और गणधर उनके प्रवचनो को सूत्र रूप से ग्रथित करते है और अपने शिष्यो को उसकी वाचना देते हैं। उनके शिष्य-प्रशिष्य उस श्रुत-साहित्य की वाचना अपने शिष्यो को देते हैं। इस प्रकार तीर्थंकर भगवान के मुख से सश्रुत-वाणी को श्रुत साहित्य कहते हैं। इसे आगम, शास्त्र और सूत्र भी कहते हैं।

वैदिक साहित्य मे 'श्रुत' के स्थान मे 'श्रुति' शब्द का प्रयोग हुआ है। श्रुति का तात्पर्य भी सुनी हुई बात ही होता है। वैदिक ऋषियो द्वारा रचित ऋचाओ और स्तुतियो को श्रुति कहते हैं। क्योकि ऋषियो के मुख से प्रवहमान वेद-वाणी को सुनकर उनके शिष्यो ने उसे स्मृति में रखा और अपने शिष्य-प्रशिष्यो को सुनाकर-सिखाकर उसके प्रवाह को सतत गतिमान रखने का प्रयत्न किया।

जैनागमो की तरह बौद्ध-ग्रन्थो मे भी 'सुत्त' शब्द मिलता है। उसका अर्थ भी वही है, जो 'सुय-श्रुत' शब्द का है अर्थात् सुना हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय-सस्कृति की त्रि-परपराओ मे प्रयुक्त सुय-श्रुत, श्रुति और सुत्त सज्ञा सर्वथा सार्थक है।

जैन-साहित्य दो विभागों में विभक्त है—१ आगम-साहित्य और २ आगमेतर-साहित्य। तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट, गणधरों एवं पूर्वधर स्थविरों द्वारा रचित साहित्य को आगम और आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों को आगमेतर साहित्य की संज्ञा दी गई है।

तीर्थंकर सदा अर्थ रूप से उपदेश देते हैं। उनका प्रवचन सूत्र रूप में नहीं होता। गणधर उस अर्थ रूप प्रवचन को सूत्र रूप में गूंथते हैं। इस अपेक्षा से आगम के दो भेद होते हैं—१ अत्थागमे—अर्थ-आगम और २ सुत्तागमे सूत्र-आगम। तीर्थंकर भगवान द्वारा उपदिष्ट वाणी को अर्थागम और उस प्रवचन के आधार पर गणधरों द्वारा रचित आगमों को सूत्रागम कहते हैं। ये आगम आचार्यों की अमूल्य एवं अक्षय ज्ञान निधि बन गए हैं। इसलिए उन्हें गणि-पिटक के नाम से भी संबोधित किया गया है। इनकी संख्या बारह है। इसलिए उनका द्वादशांगी नाम भी है।

जैन-परम्परा की यह धारणा रही है कि अनादि काल से होने वाले तीर्थंकर अपने शासन काल में द्वादशांगी का उपदेश देते हैं, अनागत काल में होने वाले तीर्थंकर इसी द्वादशांगी का उपदेश देंगे और वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान तीर्थंकर इसका उपदेश दे रहे हैं। इस तरह प्रवाह की दृष्टि से द्वादशांगी अनादि-अनन्त है। उसका प्रवाह न कभी विच्छिन्न हुआ है और न होगा। परन्तु व्यक्ति की अपेक्षा से विचार करते हैं तो इसका दूसरा पक्ष भी है। वह यह है कि प्रत्येक काल में होने वाले तीर्थंकर इसका उपदेश देते हैं। अतः उनके शासनकाल में विद्यमान द्वादशांगी उनके द्वारा उपदिष्ट होती है। वर्तमान में संप्राप्त द्वादशांगी के उपदेष्टा हैं—श्रमण भगवान् महावीर। इस तरह द्वादशांगी प्रवाह रूप से अनादि-अनन्त होने पर भी अकृतक नहीं कृतक है, अपौरुषेय नहीं पौरुषेय है। क्योंकि यह वाणी है, शब्दों एवं अक्षरों का समूह मात्र है। वाणी शब्द या अक्षरों का निर्माता कोई व्यक्ति ही होता है ईश्वर नहीं। क्योंकि ईश्वर शरीर रहित है और वाणी शरीर का धर्म है। अतः द्वादशांगी एवं अन्य कोई भी शास्त्र ईश्वर-कृत नहीं है।

द्वादशांगी यह है—१ आचारांग २ सूत्रकृतांग ३ स्थानांग ४ समवायांग ५ भगवती ६ ज्ञाता-धर्मकथांग ७ उपासक-दशांग ८ अन्तकृद्दशांग ९ अनुत्तरोपपातिक १० प्रश्न-व्याकरण ११ विपाक और १२ दृष्टिवाद। वर्तमान में दृष्टिवाद उपलब्ध नहीं है शेष एकादश-अंग उपलब्ध हैं।

दृष्टिवाद

समवायांग सूत्र में दृष्टिवाद के परिचय में लिखा है कि दृष्टिवाद में समस्त भावों की प्ररूपणा की गई है। यह मुख्य रूप से पाँच भागों में विभक्त है—१ परिकर्म २ सूत्र, ३ पूर्वगत ४ अनुयोग और ५ चूलिका।

१ परिकर्म के सात विभाग हैं—१ सिद्ध श्रेणी २ मनुष्य श्रेणी ३ स्पृष्ट श्रेणी ४ अवगाहना श्रेणी ५ उपसम्पदा श्रेणी ६ विप्रजहत् श्रेणी और ७ च्युताच्युत श्रेणी। सिद्ध श्रेणी परिकर्म के चौदह विभाग हैं—१ मातृका पद, २ एकार्थिक पद, ३ पादोष्ठ पद ४ आकाश पद ५ केतुभूत ६ राशि

वद्ध, ७ एक गुण ८ द्विगुण, ९ त्रिगुण, १० केतुभूत, ११ प्रतिग्रह, १२ समार-प्रतिग्रह, १३ नन्दावत, और १४ सिद्धवद्ध। मनुष्य श्रेणी परिक्रम के भी उक्त चादह भेद ह। शेप स्पृष्ट-श्रेणी आदि पाँच परिकम के ग्यारह-ग्यारह भेद ह। स्व समय की अपक्षा से परिकम के छह भेद हैं, सातवाँ परिकम आजीविक मत के अनुसार है। प्रथम के छह परिकम स्व-सामयिक हाने से उनमे चार नय की अपेक्षा से विचार किया गया है और सातवें परिकम म तीन नय की अपेक्षा से। परन्तु त्रि-राशिक की दृष्टि से साता परिकर्मों मे तीन नय की अपेक्षा से विचार किया गया है।

आगमो मे प्रयुक्त प्रत्यक वस्तु का विचार नय की अपेक्षा से किया जाता है। ऐसा काई शब्द या अथ नहीं है कि जिसका विचार करत समय नय का प्रयोग न किया जाए। विशेप करके द्वादशम अग दृष्टिवाद के सम्बन्ध मे तो नय से विचार करने की पद्धति रही ह। परन्तु इसका विच्छेद होने के बाद मध्यकाल मे शिष्यो की बुद्धि मे मन्दता आ जाने के कारण नय विचार की पद्धति को बन्द कर दिया। परन्तु यदि काई श्रमण-श्रमणी विचार करन के याग्य है, तो उनके लिए छूट भी है। प्राचीन काल मे कालिक श्रुत और दृष्टिवाद के प्रत्येक पद पर नय पद्धति से विचार करने की परपरा रही है। और जब तक समग्र श्रुत-साहित्य का द्रव्यानुयोग आदि चार अनुयोगो मे विभक्त नही कर दिया, तब तक नय-विचारणा करने की परपरा रही ह। आचाय आयवज्र के बाद आय रक्षित ने समग्र श्रुत-साहित्य को द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरण-करणानुयोग और धमकथानुयाग, इन चार अनुयोगो मे बाँट दिया। इसके बाद नय विचारणा के लिए यह परपरा चल पडी कि यदि श्रोता और वक्ता योग्य हा, ता अपनी योग्यता के अनुसार नय विचारणा करे आर यदि दोनो म विशिष्ट याग्यता न हो, ता सूत्र और उसके अथ से काम चलाए, परन्तु नय-विचारणा न करे।[1]

२ सूत्र अठयासी ह—१ ऋजुग २ परिणता परिणत, ३ बहुभागिक, ४ विप्रत्ययिक, ५ अनन्तर ६ परपरा, ७ समान, ८ सयूथ, ९ सभिन्न, १० यथात्याग ११ सौवस्तिक, १२ नद्यावर्त, १३ बहुल, १४ स्पृष्टा-स्पृष्ट, १५ व्यावत, १६ एवभूत, १७ द्विकावर्त, १८ वनमानोत्पाद, १९ समभिरूढ २० सवतोभद्र, २१ प्रणामा और २२ द्वि-प्रतिग्रह। उक्त २२ सूत्रो का स्व-सिद्धान्त के अनुसार स्वतत्र भाव से विचार किया जाता है, इनका परतन्त्र भाव से अर्थात् गोशालक के मत के अनुरूप विचार किया जाता है, इनका त्रि-नय की अपेक्षा से विचार करने वाले त्रि-राशि की दृष्टि से विचार किया जाता है और इनका स्व-समय की अपक्षा से चार नय की दृष्टि से विचार किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक बाईस सूत्रो का चार प्रकार से विचार होता है, अत कुल सूत्र सख्या २२×४=८८ है।

३ पूवगत मे चौदह पूर्व ह—१ उत्पाद पूर्व, २ अग्रायणीय पूर्व, ३ वीर्य पूव, ४ अस्ति-नास्ति-प्रवाद पूव, ५ ज्ञान प्रवाद पूव, ६ सत्य-प्रवाद पूव, ७ आत्म-प्रवाद पूव, ८ कर्म-प्रवाद पूर्व, ९ प्रत्याख्यान-प्रवाद पूव, १० विद्यानुवाद पूव, ११ अवन्ध्य-प्रवाद पूव, १२ प्राणायु-प्रवाद पूव, १३ क्रिया-विशाल- प्रवाद पूव, १४ लोक-विन्दुसार पूव। प्रत्येक पूव की वस्तु और चूलिका निम्न प्रकार से है—

---

[1] आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७६०, विशेषावश्यक भाष्य, गाथा १२७५।

पूर्व	वस्तु	चूलिका
१	१	४
२	१४	१२
३	८	
४	१	१
५	१२	×
६	२	×
७	१६	×
	३	×
९	२	×
१	१५	×
११	१२	×
१२	१३	×
१३	३	×
१४	२५	×

४ अनुयोग दो प्रकार का है—१ मूल-प्रथमानुयोग और २ गण्डिकानुयोग। मूल प्रथमानुयोग में—अरिहन्त भगवान् के पूर्वभव, देवलोक गमन, आयु, च्यवन, जन्म, अभिषेक, राज्य लक्ष्मी, पालकी, प्रव्रज्या, उग्रतपस्या, आहार, केवल ज्ञान, तीर्थ प्रवर्तन, संहनन, संस्थान, ऊँचाई, आयु, शिष्य, गण, गणधर, आर्या, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, केवली, मन:पर्यव-ज्ञानी, अवधि-ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, श्रुत ज्ञानी, अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले साधु-साध्वी, सिद्ध-बुद्ध होने वाले साधु-साध्वी, पादोपगमन अनशन करने वाले और वे सर्व-श्रेष्ठ श्रमण-भगवान् संपूर्ण कर्मों का क्षय करके जितने दिन का अनशन करके मुक्तिगामी होते हैं, उनका और तीर्थंकरों से सम्बन्धित ऐसी अन्य बातों का उल्लेख किया गया है।

गण्डिकानुयोग के अनेक भेद हैं जैसे—१ कुलकर गण्डिकानुयोग २ तीर्थंकर ग० ३ गणधर ग० ४ चक्रवर्ती ग० ५ दशार ग० ६ बलदेव ग० ७. वासुदेव ग० हरिवंश ग० ९ भद्रबाहु ग० १ तपःकर्म ग० ११ चित्रान्तर ग० १२ उत्सर्पिणी ग० १३ अवसर्पिणी ग० और देव, नरक एवं तिर्यञ्च गति में जो विविध जन्म होते हैं उनका व्याख्यान इत्यादि अनेक गण्डिकानुयोग हैं।

५. चूलिका—पहले चार पूर्वों की चूलिका है, अन्य की नहीं है। प्रथम पूर्व की ४ द्वितीय की १२ तृतीय की और चतुर्थ पूर्व की १ । कुल ४+१२+ +१ =१४ चूलिकाएं हैं।

समवायांग सूत्र, १४७

रचना-क्रम

दृष्टिवाद के पांच भागो मे चतुर्थ भाग पूर्वगत मे चौदह पूर्व समाविष्ट है। इनका परिमाण बहुत विशाल है। कभी एक भी पूर्व लिखा नही गया है। फिर भी उसकी विराटता को बताने के लिए आचार्यो ने परिकल्पना की है कि यदि प्रथम पूर्व को लिपि बद्ध किया जाए, तो उसमे एक हाथी के परिमाण की स्याही लगेगी। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि पूर्व-साहित्य कितना विशाल था, शब्द रूप से उसका पारायण कर सकना कठिन लगता है। सम्भवत भाव रूप से ही उसे हृदयगम किया जाता रहा होगा।

ये श्रुत या शब्द ज्ञान के समस्त विषयो के अक्षय कोष होते है। कोई भी विषय ऐसा नही रह जाता, जिसकी चर्चा पूर्व-साहित्य मे न की गई हो। वस्तुत पूर्व-साहित्य आगम या श्रुत-साहित्य की अमूल्य निधि है।

यह एक प्रश्न है कि पूर्व-साहित्य का रचना काल कब का माना जाए? इस सम्बन्ध मे दो विचारधाराएँ हैं—१ श्रमण भगवान् महावीर के पूर्व से ज्ञान-राशि की यह महानिधि चली आ रही थी, इसलिए उत्तरवर्ती श्रुत-साहित्य रचना के समय इसे पूर्व सज्ञा दी गई और दृष्टिवाद मे इन सबका समावेश कर लिया गया, और २ श्रमण भगवान् महावीर ने द्वादशागो से पूर्व चौदह आगमो का उपदेश दिया, अत इन्हे पूर्व कहा गया।[1] वर्तमान युग के पाश्चात्य एव पौर्वात्य विद्वान प्रथम विचारधारा के पक्ष मे है। क्योकि यह तो निर्विवाद रूप से मान्य है कि भगवान् महावीर के पूर्व भी श्रुत-साहित्य था और भगवान् महावीर के समय मे भगवान् पार्श्वनाथ परम्परा के श्रमण-श्रमणी भी विद्यमान थे। आगमो के पृष्ठो पर भी यह अकित मिलता है कि पार्श्वनाथ परम्परा के अनेक श्रमणो ने भगवान् महावीर के शासन को स्वीकार किया। भगवान् महावीर के शासन मे प्रविष्ट होने के पूर्व अनेक श्रमणो को भगवान् पार्श्वनाथ द्वारा उपदिष्ट द्वादशागी का परिज्ञान रहा होगा। अत ऐसा लगता है कि पूर्व परम्परा से चले आ रहे ज्ञान स्रोत को ही पूर्वो की सज्ञा देकर द्वादशागी मे समाविष्ट कर लिया हो।

पूर्व-साहित्य इतना विशद है कि उसमे समस्त श्रुत-साहित्य समा जाता है, फिर अन्य आगमो की रचना क्यो की? यह एक प्रश्न है। इसके समाधान मे आचार्य जिनभद्र क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक भाष्य मे कहा है कि भूतवाद—दृष्टिवाद अग मे समस्त वाड्मय समा जाता है, फिर भी कठिनता से समझने वाले अल्पज्ञ पुरुष एव स्त्रियो के लिए अन्य एकादश अगो की रचना की।[2] श्री मलधारी हेमचन्द्र सूरि ने विशेषावश्यक भाष्य पर की गई टीका मे इस बात को और स्पष्ट कर दिया है।

---

[1] सर्व श्रुतात् पूर्वं क्रियते इति पूर्वाणि, उत्पादपूर्वाऽदीनि चतुर्दश —स्थानांग सूत्र वृत्ति, १०,१

[2] जइ वि य भूयावाए सव्वस्स वओमयस्स ओयारो।
निज्जूहणा तहावि हु दुम्मेहे इत्थीय॥

—विशेषावश्यक भाष्य, गा ५५०

आचार्य भद्रबाहु, आचार्य शीलांक और आचारांग-चूर्णिकार इस बात में एकमत हैं कि तीर्थंकर भगवान् ने सर्व-प्रथम उपदेश भी आचारांग का दिया और गणधरों ने रचना भी सर्व प्रथम इसकी की। अन्य अंग और पूर्व आदि सब आचारांग के अनन्तर रचे गए हैं। परन्तु आवश्यक चूर्णि में इससे भिन्न मतों का उल्लेख भी मिलता है। कुछ विचारकों का अभिमत है कि तीर्थंकरों ने प्रथम अर्थ रूप में पूर्वों का उपदेश दिया परन्तु गणधरों ने सूत्र रूप में सर्व प्रथम आचारांग आदि अंगों की रचना की। किन्तु कुछ आचार्यों का यह अभिमत है कि सर्व प्रथम उपदेश भी पूर्वों का दिया गया और ग्रन्थ रचना भी पूर्वों की की गई। उपदेश एवं रचना की दृष्टि से पहले पूर्व हैं उसके बाद आचारांग आदि अन्य अंग हैं किन्तु स्थापना की दृष्टि से आचारांग को सर्व-प्रथम स्थान दिया गया है। अतः योजना की दृष्टि से आचारांग का प्रथम स्थान है परन्तु रचना की अपेक्षा से पूर्वों का स्थान पहला है।

आगमों में श्रुत-साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की परंपरा के तीन क्रम मिलते हैं। कुछ श्रमण चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता होते थे या उससे कम पूर्वों के। कुछ श्रमण द्वादशांगी के विज्ञाता होते थे। और कुछ श्रमण सामायिक आदि एकादश अंगों का अध्ययन करते थे। इन सब में चतुर्दश पूर्वधर श्रमणों का विशिष्ट महत्व रहा है। उन्हें श्रुत-केवली कहा गया है और पूर्वधर स्थविरों या आचार्यों के द्वारा रचित साहित्य को भी आगम कहा गया है और उनकी वाणी को भी वीतराग वाणी की तरह प्रामाणिक माना गया है।

चौदह पूर्व

	नाम	विषय	पद-परिमाण
१	उत्पाद	द्रव्य और पर्यायों की उत्पत्ति	एक करोड़
२	अग्रायणीय	द्रव्य पदार्थ और जीवों का परिमाण	छियानबे लाख
३	वीर्य-प्रवाद	सकर्म और अकर्म जीवों के वीर्य का वर्णन	सत्तर लाख
४	अस्ति-नास्ति-प्रवाद	पदार्थ की सत्ता और असत्ता का निरूपण	साठ लाख
५	ज्ञान प्रवाद	ज्ञान का स्वरूप और प्रकार	एक कम एक करोड़
६	सत्य प्रवाद	सत्य का निरूपण	एक करोड़ छह
७	आत्म-प्रवाद	आत्मा जीव का निरूपण	छब्बीस करोड़
	कर्म प्रवाद	कर्म का स्वरूप और प्रकार	एक करोड़ अस्सी लाख
९	प्रत्याख्यान-प्रवाद	व्रत-आचार, विधि-निषेध	चौरासी लाख

आचारांग चूर्णि पृष्ठ ३

आवश्यक चूर्णि, पृष्ठ, २६ ५७

१०	विद्यानुप्रवाद	सिद्धियो और उनके साधनो का निरूपण	एक करोड दस लाख
११	अवन्ध्य	शुभाशुभ फल की अवश्य-सभाविता का निरूपण	छब्बीस करोड
१२	प्राणायु-प्रवाद	इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, आयु और प्राण का निरूपण	एक करोड
१३	क्रिया-विशाल	शुभाशुभ क्रियाओ का निरूपण	नव करोड
१४	लोक-विन्दुसार	लोक-विन्दुसार लब्धि का स्वरूप और विस्तार	साढे बारह करोड

भाषा

आगम-साहित्य की भाषा अर्ध-मागधी है, जिसे वर्तमान मे प्राकृत कहते हैं। आगम-साहित्य मे इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि तीर्थंकर अर्ध-मागधी भाषा मे उपदेश देते हैं।[1] तीर्थंकर अन्य भाषा मे उपदेश न देकर अर्ध-मागधी या प्राकृत मे ही उपदेश क्यो देते है? इसके समाधान मे आचार्य हरिभद्र ने कहा है कि "चारित्र की साधना-आराधना करने के इच्छुक मन्द बुद्धि स्त्री-पुरुषो पर अनुग्रह करने के लिए सर्वज्ञ भगवान् सिद्धात की प्ररूपणा या आगमो का उपदेश प्राकृत मे देते हैं।[2] भगवती सूत्र मे गौतम स्वामी के एक प्रश्न—देव किस भाषा मे बोलते हैं—का उत्तर देते हुए भगवान् महावीर ने कहा—"हे गौतम! देव अर्धमागधी भाषा मे बोलते हैं और लोक मे बोली जाने वाली भाषाओ मे अर्धमागधी भाषा ही विशिष्ट एव श्रेष्ठ भाषा है।[3] प्रज्ञापना सूत्र मे अर्धमागधी भाषा मे बोलने वाले व्यक्तियो को भाषा आर्य कहा है।[4] इससे यह स्पष्ट होता है कि भगवान् महावीर अर्ध-

---

[1] भगव च ण अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ।

—समवायाग सूत्र, पृष्ठ ६०

तएण समणे भगव महावीरे कूणिअस्स रण्णो भिंभिसार-पुत्तस्स अद्धमागहीए भासाए भासइ सावि य ण अद्धमागही भासा तेसिं सव्वेसिं अप्पणो सभासाए परिणामेण परिणमइ।

—औपपातिक सूत्र

[2] बाल-स्त्री-मन्द-मूर्खाणा, नृणा चारित्रकाक्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं सर्वज्ञै सिद्धान्त प्राकृते कृत ॥ —दशवैकालिक टीका

[3] गोयमा! देवाण अद्धमागहीए भासाए भासति, सावि य ण अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी विसिस्सइ। —भगवती सूत्र, ५,४,२०

[4] भासारिया जे ण अद्धमागहीए भासाए भासेंति।

—प्रज्ञापना सूत्र, पृ ५६

मागधी भाषा में प्रवचन देते थे और इसी भाषा में सूत्र-साहित्य की रचना की गई। निशीथ चूर्णि में चूर्णिकार ने इस बात का उल्लेख किया है कि "पोराण-सुत्त—आगमों की भाषा अर्धमागधी नियत है।"[1] अतः चूर्णिकार जिनदास महत्तर अर्धमागधी का अर्थ दो प्रकार से करते हैं—१. आधे मगध देश में बोली जाने वाली भाषा और २. अठारह जाति की देशी भाषा। अठारह जाति की देशी भाषा का उल्लेख ज्ञाता-धर्म कथा और औपपातिक सूत्र में मिलता है।[2] इससे यह निश्चित होता है कि सूत्र-साहित्य अर्धमागधी भाषा में रचा गया। आचार्य हेमचन्द्र ने इसे 'आर्ष' कहा है—इसके लिए आगम में ऋषि-भाषित शब्द का प्रयोग मिलता है।

इस बात से समस्त आचार्य एकमत हैं कि तीर्थंकर अर्धमागधी भाषा में उपदेश देते हैं और एकादश अंग भी अर्धमागधी भाषा में हैं। परन्तु दृष्टिवाद—जिसमें चौदह पूर्व अन्तर्गत हैं की भाषा कौन-सी है? वह संस्कृत में रचा गया या प्राकृत में? अब तक विद्वानों का मत है कि पूर्वों की भाषा संस्कृत थी। भाषा की क्लिष्टता एवं विषय की गहनता के कारण अन्य एकादश अंगों की रचना प्राकृत या अर्धमागधी भाषा में की गई। प्रभावक चरित्र के रचयिता श्री प्रभाचन्द्र सूरि ने प्रभावक चरित्र में लिखा है—पुरातन काल में चौदह पूर्व संस्कृत भाषा में थे। प्रज्ञातिशय साध्य होने के कारण काल की प्रबलता से उनका विच्छेद हो गया। वर्तमान में आर्य सुधर्मा स्वामी द्वारा रचित एकादश अंग हैं। उन्होंने मन्द-बुद्धि स्त्री-पुरुषों के सुगमता से समझ में आ सके इसलिए एकादश अंगों की प्राकृत में रचना की।[3] इस सम्बन्ध में श्री वर्द्धमान सूरि ने भी आचार-दिनकर ग्रन्थ में 'यथा उक्तमागमे' लिखकर आगम से निम्न गाथा उद्धृत की है—

"मुत्तूण दिट्ठिवायं कालिय-उक्कालियंगसिद्धंतं।
थी-बाल-वायणत्थं पाइयमुइयं जिणवरेहिं ॥"[4]

दृष्टिवाद को छोड़कर शेष कालिक-उत्कालिक अंग—सिद्धान्त-साहित्य का बाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष सब सरलता से वाचन एवं अध्ययन कर सकें इसलिए तीर्थंकरों ने सूत्र-साहित्य का उपदेश प्राकृत भाषा में दिया।

—

पोराणमद्धमागह भासानिययं हवइ सुत्तं।

—निशीथ चूर्णि

[2] ज्ञाता-धर्मकथा, सू १; औपपातिक सूत्र सू ३

सिद्ध हेम प्राकृत व्याकरण ८, १, ३

सक्कता पागता चेव दुहा भणितीओ आहिया।
सरमंडलम्मि गिज्जंते पसत्था इसि-भासिता ॥

—स्थानांग सूत्र ७ ३९४

[3] प्रभावक चरित्र श्लोक ११४ ११८

आचार दिनकर; व्रत विभाग प्रस्तार पृष्ठ ३११

परन्तु परपरा मे जो यह मान्यता चली आ रही है कि तीर्थंकर सदा-सर्वदा अर्धमागधी या प्राकृत भाषा मे उपदेश देते हैं, इससे यह बात सिद्ध होती है कि पूर्व-साहित्य की भाषा सस्कृत नही, प्राकृत ही होनी चाहिए। यदि पूर्व-साहित्य को भगवान् महावीर के पहले से चली आ रही ज्ञान-धारा मानें, तब भी यह तो निश्चित है कि वह ज्ञान-धारा उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरो द्वारा ही उपदिष्ट थी। और सब तीर्थंकरो का उपदेश अर्धमागधी भाषा मे होता था। ऐसी स्थिति मे पूर्वों की भाषा सस्कृत मानना कुछ अट-पटा-सा लगता है। यह ऐतिहासिक विषय के अन्वेषको की खोज का विषय है।

आगमो का प्रामाण्य-अप्रामाण्य

केवल ज्ञानी, अवधि ज्ञानी, मन पर्यव ज्ञानी, चतुर्दश पूर्वधर और दश-पूर्वधर के द्वारा उपदिष्ट एव रचित साहित्य को आगम कहते हैं। आगम साहित्य मे द्वादशागी या गणिपिटक का प्रमुख स्थान है। इसके उपदेष्टा तीर्थंकर भगवान् होते हैं। वतमान काल मे रचित द्वादशागी के उपदेष्टा श्रमण भगवान महावीर है और उसके सूत्रकार गणधर सुधर्मा हैं। तीर्थंकर सदा अर्थ रूप से उपदेश देते है और गणधर उस उपदेश को सूत्ररूप मे गूथते हैं। द्वादशागी के अतिरिक्त उपाग आगमो के रचियता स्थविर हैं। वह चौदह पूवधर—श्रुत-केवलियों या विशिष्ट ज्ञानी श्रमणो की वाणी है, सर्वज्ञ की नहीं। इसलिए द्वादशागी स्वत प्रमाण है। उसके अतिरिक्त शेष आगम-साहित्य परत प्रमाण है। जो आगम द्वादशागी के अनुरूप है, अविरुद्ध हैं, वे प्रामाणिक हैं, अन्य अप्रामाणिक हैं।

आगम-विभाग

श्रुत-साहित्य प्रणेता की अपेक्षा से दो भागो मे विभक्त होता है—१ अग प्रविष्ट और २ अनग-प्रविष्ट, अग बाह्य। श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारह गणधरो ने उनके अर्थ रूप उपदेश को जो सूत्र रूप मे गूथा या भगवान् के उपदेश को जो साहित्य का रूप दिया, वह अग-प्रविष्ट आगम-साहित्य कहलाता है। स्थविरो ने जिस साहित्य की रचना की, वह अनग-प्रविष्ट या अग-बाह्य कहलाता है। द्वादशागी के अतिरिक्त जो आगम-साहित्य उपलब्ध है, वह सब अनग-प्रविष्ट है।

तीर्थंकर केवल ज्ञान को प्राप्त करने के बाद गणधरो को स्थापित करके तीर्थ का प्रवर्तन करत है। जैन-परपरा में यह मान्यता रही है कि गणधरो के प्रव्रजित होने पर भगवान उन्हें त्रिपदी—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य का उपदेश देते है। उस उपदेश के आधार पर जिस साहित्य का, जिन आगमो का निर्माण किया गया, वह अग-प्रविष्ट साहित्य है। अग-प्रविष्ट आगम-साहित्य का स्वरूप समस्त तीर्थंकरो के शासन में निश्चित होता है। सभी तीर्थंकर द्वादशागी का उपदेश देते है। परन्तु अनग प्रविष्ट आगमो की सख्या निश्चित नही होती। उसमे कम ज्यादा भी होते रहते है।[1] वर्तमान मे उपलब्ध एकादश अग

---

[1] गणहर-थेरकय वा आएसा मुक्कवागरणओ वा।
धुव-चल विसेसओ वा अगाणगेसु नाणत्त ॥

वि० भा०, ५५०

सुधर्मा गणधर की वाचना है। गौतम आदि अन्य दस गणधरों की आठ वाचनाएँ थी परन्तु वर्तमान में उनका अस्तित्व नहीं रहा। इसलिए वर्तमान में उपलब्ध एकादश अंग साहित्य के रचयिता सुधर्मा गणधर माने जाते हैं।

रचना की दृष्टि से अनंग-प्रविष्ट आगम-साहित्य को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं— १ स्थविरों द्वारा रचित अनंग—अंग-बाह्य साहित्य और २ स्थविरों द्वारा निर्यूढ अनंग साहित्य। स्थविरों ने कुछ आगमों की अपनी भाषा में रचना की है और कुछ आगमों को पूर्व एवं अंग साहित्य में से उद्धृत किया है। जिन आगमों को पूर्व या द्वादशांगी में से उद्धृत या संकलित किया गया है उन्हें निर्यूढ कहते हैं। दशवैकालिक आचारांग का द्वितीय श्रुतस्कन्ध निशीथ व्यवहार, बृहत्कल्प दशाश्रुत-स्कंध ये निर्यूढ आगम हैं। आचार्य शय्यंभव ने थोड़े समय में अपने अल्पायु पुत्र मनक की साधना में तेजस्विता लाने के लिए दशवैकालिक सूत्र का निर्यूहण किया। इसके अतिरिक्त अन्य आगमों के निर्यूहक श्रुत-केवली आचार्य भद्रबाहु हैं। प्रज्ञापना-सूत्र के रचयिता श्यामाचार्य अनुयोगद्वार सूत्र के निर्माता आर्य रक्षित और नन्दी सूत्र के देववाचक क्षमाश्रमण माने जाते हैं।

आगमों के निर्माता

आगमों के निर्माता या कर्ता कौन है? इस विषय में सभी आचार्य एकमत नहीं हैं। आगम एवं उसके व्याख्या साहित्य का अध्ययन करने पर इस सम्बन्ध में हमें दो विचारधाराएँ देखने को मिलती हैं। एक विचारधारा—जो प्राचीन है, यह मानती है कि द्वादशांगी के कर्ता गणधर हैं और उपांग आदि अंग-बाह्य आगम-साहित्य के निर्माता स्थविर हैं। दूसरी विचार धारा—जो अर्वाचीन है की मान्यता है कि अंग एवं अंग-बाह्य समस्त आगमों के निर्माता गणधर ही हैं।

अनुयोग द्वार सूत्र में लोकोत्तर आगमों का वर्णन करते हुए लिखा है कि आचारांग से लेकर दृष्टि वाद तक द्वादश अंगों के प्रणेता तीर्थंकर हैं। इसका अभिप्राय इतना ही है कि तीर्थंकरों के उपदेश को गणधरों ने सूत्र रूप में गूंथा या उनके प्रवचनों के आधार पर गणधरों ने द्वादशांगी की रचना की। यही बात नन्दी सूत्र में सम्यक् श्रुत के प्रकरण में परिलक्षित है। षट्खण्डागम की धवला टीका और कषाय

लोगुत्तरिए—जं इमं अरिहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पन्न-णाण-दंसण-धरेहिं तीय-पच्चुप्पन्नमणागय-जाणएहिं तिलुक्कवहिय महिय-पूइएहिं, सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं तंजहा—आयारो जाव दिट्ठिवाओ।

—अनुयोगद्वार सूत्र ४१

नन्दी सूत्र ४

पाहुड की जयधवला टीका मे गौतम गणधर को द्वादशाग और चौदह पूर्व का सूत्र-कर्ता कहा गया है।[1] इस मान्यता का समर्थन अन्य ग्रन्थो मे भी उपलब्ध होता है। आचार्य उमास्वाति ने अपने तत्त्वार्थ भाष्य मे आगम के अग और अग वाह्य भेद करने के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "जो आगम गणधर कृत है, वे अग है और जो स्थविर कृत है, वे अग-बाह्य है।[2] इससे स्पष्ट होता है कि आगम-युग की मूल मान्यता अग-साहित्य को ही गणधर-कृत मानने की रही है।

नन्दी सूत्र की चूर्णि और आचार्य हरिभद्र रचित टीका म अग और अग-बाह्य की रचना के सम्बन्ध मे दो विचार धाराएँ दिखाई देती हैं। उनमे एक विचारधारा अग-साहित्य को गणधर कृत और अग-बाह्य को स्थविर कृत मानने की है। दूसरी अग बाह्य को भी गणधर कृत मानने की है।[3] यह कहना कठिन है कि यह दूसरी मान्यता कब से प्रचलित हुई। परन्तु इतना निश्चित है कि आवश्यक सूत्र गणधर-कृत है, यह मान्यता आवश्यक निर्युक्ति मे स्पष्ट रूप मे परिलक्षित होती है। आवश्यक सूत्र के सामायिक अध्ययन के उपोद्घात मे निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु ने जो प्रश्न उठाए है और स्वय ने ही जो उनका उत्तर दिया है, उसका अनुशीलन-परिशीलन करने वाले पाठक को यह स्पष्ट हो जाएगा कि आचार्य बार-बार घूम-फिर कर इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि आवश्यक सूत्र के सामायिक आदि अध्ययनो की रचना गणधरो ने की है।[3] विशेषावश्यक भाष्य के रचयिता आचार्य जिनभद्र ने भी निर्युक्ति के मत का समर्थन किया है।[4] आचार्य भद्रबाहु का कथन है कि मैं जो सामायिक आदि अध्ययनो को गणधर कृत कह रहा हूँ, यह मान्यता मुझे परपरा से प्राप्त है। जब हम इस परपरा का अन्वेषण करते हैं तो आवश्यक सूत्र के सामायिक अध्ययन को गणधर कृत मानने की परपरा अनुयोगद्वार सूत्र—जहाँ आवश्यक का वर्णन किया गया है, मिलती है।[5] अनुयोगद्वार सूत्र की चूर्णि मे चूर्णिकार ने उक्त गाथाओ के सम्बन्ध मे कुछ नही कहा है। परन्तु अनुयोगद्वार सूत्र के वृत्तिकार आचार्य हरिभद्र सूरि ने इसका वर्णन किया है।[7] इससे ऐसा माना जा सकता है कि उक्त गाथाओ का अभिप्राय यह है कि आवश्यक सूत्र गणधर कृत है। एक बात यह भी है कि आगमो मे जहाँ श्रमण-श्रमणी के एकादश अग के अध्ययन का वर्णन आता है, वहाँ पर उल्लेख मिलता है—"अमुक श्रमण-श्रमणी ने स्थविर भगवान के पास सामायिक

---

[1] षट्खडागम, धवलाटीका, भाग १, पृष्ठ ६५, कषाय पाहुड, जयधवला टीका, भाग १, पृष्ठ ८४

[2] तत्त्वार्थ भाष्य, १, २०

[3] नन्दी सूत्र, चूर्णि, पृष्ठ ४७, ६०

[4] आवश्यक निर्युक्ति, गाथा १४०-४१

[5] आवश्यक निर्युक्ति, गाथा, ८०, ६०, २७०, ७३४, ७३५, ७४२, ७४५, ७५० और विशेष० भाष्य, गाथा, ६४८-४६, ६७३-७४, १४८४-८५, १५४५-४८, १५५३, २०८२-८३, २०८६

[6] अनुयोग द्वार सूत्र, १५५

[7] अनुयोगद्वार वृत्ति, आचार्य हरिभद्र कृत, पृष्ठ १२२

आदि एकादश अंगों का अध्ययन किया। इससे ऐसा प्रतिभास होता है कि अंग-बाह्य सूत्रों में सबसे पहले आवश्यक सूत्र या उसके सामायिक अध्ययन को गणधर कृत मानने की परम्परा चालू हुई और इससे इतना निश्चित होता है कि अंग बाह्य आवश्यक सूत्र को गणधर कृत मानने की परम्परा कम से कम आवश्यक निर्युक्ति जितनी प्राचीन है।

परन्तु यह परम्परा केवल आवश्यक सूत्र तक ही सीमित नहीं रही उसका क्षेत्र बढ़ता गया और धीरे-धीरे समस्त अंग-बाह्य आगमों को गणधर कृत माना जाने लगा। दिगम्बर ग्रन्थों में भी इसका प्रमाण मिलता है। दिगम्बर आचार्य जिनसेन (वि स ८) अपने हरिवंश पुराण में लिखते हैं कि भगवान् महावीर ने सर्व प्रथम बारह अंगों का अर्थ रूप से उपदेश दिया उसके बाद गौतम गणधर ने उपांग सहित द्वादशांगी की रचना की।[1]

नन्दी सूत्र में द्वादशांगी को जिन-प्रणीत कहा है। परन्तु चूर्णिकार ने अंग बाह्य आगमों को भी उसके साथ जोड़ने का प्रयत्न किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि चूर्णिकार के समय में अंग बाह्य आगमों को गणधर कृत मानने की परंपरा प्रचलित हो गई थी। यही कारण है कि नन्दी सूत्र में जो अंग और अंग-बाह्य आगमों की गणना की गई है वहाँ भी चूर्णिकार इस बात का उल्लेख करते हैं कि अंग और अंग-बाह्य उभय आगम अरिहंत भगवान् की वाणी है। अंग-बाह्य आगम भी वीतराग वाणी है इस मान्यता का यह क्रम यहीं समाप्त नहीं हुआ। इसका प्रवाह और आगे प्रवहमान होता रहा और परिणाम स्वरूप पुराण साहित्य भी गणधर कृत माना जाने लगा। पुराणकारों ने अपने पुराणों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए उनकी प्रस्तावना में यह उल्लेख करना शुरू कर दिया कि मूल रूप से पुराण गणधर कृत हैं हमें यह वस्तु परंपरा से प्राप्त हुई है जिसके आधार से पुराणों की रचना की गई है। इस तरह अंग और अंग-बाह्य को ही नहीं प्रत्युत पुराण साहित्य पर भी गणधर-कर्तृत्व की मोहर लगाई जाने लगी।

अब प्रश्न यह होता है कि अंग-बाह्य साहित्य को गणधर कृत मानने का क्या कारण रहा? इसका स्पष्ट उत्तर यह हो सकता है कि गणधर ऋद्धि-सम्पन्न माने जाते थे और उन्होंने भगवान् के प्रवचन को साक्षात् रूप से ग्रहण किया था। अतः उनके नाम को जोड़ देने से ग्रन्थ की प्रामाणिकता अधिक बढ़ जाती है। इसलिए आचार्यों ने आगम में सन्निविष्ट हो सकने वाले सम्पूर्ण साहित्य को गणधर के नाम से प्रचारित कर दिया।

हरिवंश पुराण २, ९२, १ ८, १११
नन्दी सूत्र चूर्णि पृष्ठ ३
वही पृष्ठ ४
पद्मचरित १ ४१-४२ महापुराण (आदिपुराण) १ २६ १ १९८-२ १

आगम एव उसके व्याख्या-साहित्य का अध्ययन करने पर यह स्पष्टतया ज्ञात होता है, जबकि श्वेतावर और दिगम्बर परपरा मे साहित्य को लेकर मतभेद तीव्र होने लगा, तब अग बाह्य आगम-साहित्य को भी गणधर-कृत मानने की प्रवृत्ति चली और आगे चलकर वह बढती ही गई, यहाँ तक कि आचार्यों द्वारा रचित पुराण-साहित्य भी गणधरो की रचना कही जाने लगी।

इतनी लम्बी चर्चा का निष्कर्ष यह है कि अग बाह्य को गणधर कृत मानने की परपरा अर्वाचीन है और वह परिस्थिति वश चालू हुई। परन्तु, यथार्थ मे अग-साहित्य ही तीर्थंकर भगवान की वाणी है और गणधर उसके सूत्रकार हैं। अग बाह्य आगम-साहित्य के रचियता गणधर नही, स्थविर हैं और अनेक आगमो के साथ उन स्थविरो का प्रणेता के रूप मे नाम जुडा हुआ है, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर आए हैं।

आगम-परिषद्

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् दूसरी शताब्दी (वीर स० १६०) मे नन्दराज के समय मे पाटलिपुत्र—पटना मे द्वादश वर्ष का भीषण दुष्काल पडा। दुर्भिक्ष के कारण श्रमण-श्रमणी का निर्वाह होना कठिन हो गया। इसलिए वे वहाँ से अन्यत्र विहार कर गए और कुछ विशिष्ट श्रमणो ने अनशन व्रत करके समाधि-मरण को प्राप्त किया। ऐसी स्थिति मे श्रुत-साहित्य के समाप्त होने का भय होने लगा।। क्योकि उस समय लिखने की परपरा थी नही। समस्त श्रुत-साहित्य कण्ठस्थ करने करवाने की परपरा थी। अत दुष्काल के समाप्त होने पर श्रमण-सघ पाटलिपुत्र मे एकत्रित हुआ और अपनी-अपनी स्मृति के अनुसार एकादश अगो को व्यवस्थित किया।[1] इस सम्मेलन को पाटलिपुत्र परिषद् कह सकते हैं। इसमे श्रमण-सघ ने एकादश अगो के पाठो को सर्व सम्मति से स्वीकार किया और उनके अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था की। परन्तु उक्त परिषद् मे द्वादशम अग दृष्टिवाद का कोई ज्ञाता नही था। उस समय केवल आचार्य भद्रबाहु ही सम्पूर्ण द्वादशागी—चौदह पूर्व के ज्ञाता थे और वे उस समय नेपाल की गिरि-कन्दराओ में महाप्राण नामक ध्यान की साधना मे सलग्न थे।

---

[1] जाओ अ तम्मि समए दुक्कालो दोय-दसय वरिसाणि।
सव्वो साहु-समूहो गओ तओ जलहितीरेसु ॥
तदुवरमे सो पुणरवि पाडलिपुत्ते समागओ विहिया।
सघेण सुयविसया चिंता किं कस्स अत्थेति ॥
ज जस्स आसि पासे उद्देस्स ज्झयणमाइ सघडिउ ॥
त सव्व एक्कारय अगाइ तहेव ठवियाइ ॥

—आचार्य हरिभद्र कृत उपदेश-पद

उन्हें आगम-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए बुलाया गया तो उन्होंने अपनी साधना का कारण बता कर आने में असमर्थता प्रकट की। इस पर श्रमण-संघ ने पुनः उनके पास कुछ श्रमणों को यह सन्देश देकर भेजा कि साधना महान् है या संघ सेवा। इस सन्देश ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया और संघ सेवा की महानता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए आचार्य भद्रबाहु ने संघ सेवा करना स्वीकार किया। श्रमण-संघ ने श्रुत-परम्परा के प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए पाँच-सौ श्रमणों को चौदह पूर्व का अध्ययन करने के लिए आचार्य भद्रबाहु की सेवा में रखा और एक हजार श्रमण उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए उनके साथ रहे। परन्तु स्थूलभद्र के अतिरिक्त अन्य श्रमण ज्ञान-साधना को सतत चालू नहीं रख सके व बीच में ही अध्ययन छोड़कर चले आए। स्थूलभद्र अपने अध्ययन में अनवरत लगे रहे और उन्होंने दस पूर्वों का अध्ययन किया। उस समय स्थूलभद्र की सात बहिनें—जो साध्वियाँ थीं उनके दर्शनार्थ पहुँची तो उन्होंने अपनी विद्या का ज्ञान-साधना का चमत्कार दिखाने के लिए सिंह का रूप धारण कर लिया। जब आचार्य भद्रबाहु को इस बात का संकेत मिला तो उन्होंने उसे अपात्र समझकर आगे अध्ययन कराना बन्द कर दिया। स्थूलभद्र के द्वारा अपनी गलती की क्षमायाचना करने और अत्यधिक आग्रह करने के बाद आचार्य भद्रबाहु ने उन्हें शेष चार पूर्वों की मूल रूप से वाचना दी परन्तु उसका अर्थ रूप से अध्ययन नहीं करवाया। इस तरह स्थूलभद्र मूल सूत्र की अपेक्षा से चौदह पूर्व के अन्तिम ज्ञाता थे। उनके बाद दस पूर्व का ज्ञान ही शेष रहा। वज्र स्वामी अन्तिम दश पूर्वधर थे। वज्र स्वामी के शिष्य आर्यरक्षित नव पूर्व और दशम पूर्व के २४ यविक के ज्ञाता थे। उनके शिष्य दुर्बलिका पुष्यमित्र ने नव पूर्व का अध्ययन किया परन्तु अनभ्यास के कारण वह नवमें पूर्व को भूल गया। विस्मृति का यह क्रम आगे बढ़ता रहा और समय के अनुसार ज्ञान-साधना एवं स्मृति में कमी आती रही।

मथुरा-परिषद्

पाटलिपुत्र में श्रुत-परम्परा के प्रवाह को व्यवस्थित रखने का प्रयत्न किया गया। परन्तु, आगम-साहित्य के छिन्न-भिन्न होने के प्रसंग आते रहे। भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् तीसरी शताब्दी के अन्त में (वीर नि २९१) आर्य सुहस्ती सूरि के समय सम्प्रति राजा के राज्य में फिर बारह वर्ष का भयंकर दुष्काल पड़ा। इसके पश्चात् आर्य श्री स्कंदिल और वज्र स्वामी के समय में पुनः भयंकर दुष्काल पड़ा। इस दुष्काल का वर्णन नन्दी सूत्र की चूर्णि में किया गया है। उस समय (वी नि २ और ४ के मध्य में) आचार्य स्कंदिल के नेतृत्व में श्रमण-संघ का सम्मेलन हुआ। आगमों को व्यवस्थित करने का यह दूसरा प्रयत्न था। इस प्रयत्न को माथुरी वाचना या मथुरा परिषद् कहते हैं। इसी समय आचार्य नागार्जुन के नेतृत्व में वल्लभी में भी कुछ श्रमणों का सम्मेलन हुआ और उन्होंने अपनी स्मृति में रहे हुए आगमों को व्यवस्थित रूप दिया। इसे नागार्जुनीय वाचना कहते हैं। आगम-साहित्य के व्याख्याकारों ने जब आगमों पर टीकाएँ लिखी तब उन्हें कहीं-कहीं पाठभेद दिखाई दिया तो उन्होंने उसका पाठान्तर के रूप में उल्लेख किया है। उस समय ऐसा पाठ

मिलता है "अयणतर पुण, नागार्जुनीयास्तु पठन्ति।" इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के पूर्व वल्लभी मे आचार्य नागार्जुन के सान्निध्य म एक आगम वाचना हुई थी। इस समय आचार्य आर्य रक्षित ने अनुयोगद्वार की रचना की।

वल्लभी-परिषद्

मथुरा आगम परिषद् के करीब डेढ सौ वर्ष बाद वल्लभी मे आगमो को व्यवस्थित रूप देने के लिए तृतीय बार श्रमण-सघ का मिलन हुआ। वीर स० ९८० और वि० स० ५१० मे आचार्य देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे आगमो के पाठो को व्यवस्थित किया गया और स्मृति मे अत्यधिक कमी आ जाने के कारण आगमो को लिपिवद्ध भी किया गया। आगम-साहित्य मे पुनरुक्ति अधिक स्थानो पर दिखाई देती है। साधक को सावधान करने एव उसके अतर मन मे वीतराग वाणी को जमाने के लिए एक ही बात कई बार दुहराई गई। अत जब लिखन का प्रसग आया तो उनके सामने कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित हुई। क्योकि एक बात अनेक आगमो मे अनेक स्थानो पर होने के कारण बहुत लिखना पडता था। अत आगमो को लिपिबद्ध करते समय पुनरुक्ति को कम करने के लिए हर आगम मे इस बात को न लिखकर एक-दूसरे आगम का उल्लेख कर दिया गया। जैसे कोई बात रायपसेणीय सूत्र मे लिखी जा चुकी है, तो उस आगम मे यह सकेत कर दिया गया—"जहा रायपसेणीय"। इससे अनेक अगो मे वर्णित विषय, जो पहले उपागो मे लिखे जा चुके थे, उनके लिए भी पश्चात् लिखे जाने वाले अगो मे उपागो का सकेत किया गया।

यह आगमो की अन्तिम वाचना थी। इसके पश्चात् इतने विशाल रूप मे कोई सर्वमान्य आगम-परिषद् नही हुई। देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के पश्चात् कोई पूर्वधर भी नही रहा। इस समय आचार्य देवर्द्धिगणि ने नन्दी सूत्र की रचना की। इसमे आगम-साहित्य का परिचय भी दिया गया है। और इसी समय सकलित एव व्यवस्थित किए गए समवायाग सूत्र मे भी आगमो का परिचय जोडा गया—ऐसा प्रतीत होता है।

आगम-विच्छेद का इतिहास

भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् उनके द्वितीय पट्टधर आचार्य जम्बू अन्तिम सर्वज्ञ थे। उनके निर्वाण के बाद भरत क्षेत्र मे कोई सर्वज्ञ नही हुआ। उनके पश्चात् चतुर्दश पूर्वधरो की परपरा चलती रही। आचार्य भद्रबाहु अन्तिम चतुर्दश पूर्वधर थे। उनका स्वर्गवास वीर-निर्वाण स० १७० मे हुआ। अर्थ की दृष्टि से इसी समय चार पूर्वो का विच्छेद हो गया। दिगबर परपरा के अनुसार आचार्य भद्रबाहु का स्वर्गवास वीर निर्वाण के १६२ वर्ष बाद हुआ।

आचार्य स्थूलभद्र मूल सूत्रपाठ से चतुर्दश पूर्वधर थे। परन्तु उनके स्वर्गवास (वीर० स० २१६) के बाद शब्द—मूल रूप से भी चार पूर्वो का लोप हो गया। आचार्य आर्यरक्षित तक दश पूर्वो की परपरा

चलती रही। वीर निर्वाण सं. १७० और वि. सं. १ ? में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके बाद दसम पूर्व भी विच्छिन्न हो गया। और वीर निर्वाण सं. ५८४ (वि. सं. ११४) में आचार्य दुर्बलिका पुष्यमित्र के निधन के साथ नवम पूर्व भी लुप्त हो गया और आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के स्वर्गवास के बाद पूर्वों का पूर्णतः लोप हो गया। वीर निर्वाण के एक हजार (वि. सं. ५३) के पश्चात् कोई भी पूर्वधर श्रमण नहीं रहा।

दिगम्बर परंपरा के अनुसार वीर निर्वाण के ६२ वर्ष तक केवल ज्ञान का अस्तित्व रहा। आचार्य जम्बू स्वामी अन्तिम केवल ज्ञानी हुए। उनके निर्वाण के बाद १ वर्ष तक चौदह पूर्वों का ज्ञान रहा। आचार्य भद्रबाहु अन्तिम चौदह पूर्वधर थे। इनके पश्चात् १ वर्ष तक दस पूर्व रहे। आचार्य धर्मसेन दस पूर्व के अन्तिम ज्ञाता थे। उनके पश्चात् पूर्वों का लोप हो गया। २२ वर्ष तक एकादश अंगों का ज्ञान रहा। एकादश अंग-साहित्य के अन्तिम अध्येता आचार्य ध्रुवसेन थे। इनके पश्चात् ११ वर्ष तक केवल एक अंग-आचारांग सूत्र का अध्ययन चलता रहा। इसके अन्तिम ज्ञाता आचार्य लोहार्य थे। वीर-निर्वाण ६ ३ (वि. सं. २११) के पश्चात् आगम-साहित्य का पूर्णतः लोप हो गया।

केवल ज्ञान के विच्छिन्न होने की मान्यता में दोनों परंपराएँ—श्वेताम्बर और दिगम्बर एक मत हैं। चार पूर्वों का लोप आचार्य भद्रबाहु के पश्चात् हुआ इसमें भी दोनों एकमत हैं। केवल समय में थोड़ा-सा अन्तर है। श्वेताम्बर परंपरा भद्रबाहु का स्वर्गवास वीर-निर्वाण सं. १७ में मानती है और दिगम्बर परम्परा १६२ में केवल वर्ष के समय का अन्तर है। यहाँ तक दोनों परंपराएँ एक-दूसरे के साथ-साथ चलती रही हैं। इसके पश्चात् दोनों परंपराओं की मान्यताओं में दूरी बढ़ती गई। दसम पूर्व के लोप होने की मान्यता में दोनों के समय का बहुत लम्बा अन्तर है। श्वेताम्बर परंपरा के अनुसार दस पूर्वों के ज्ञाता वीर-निर्वाण के ५८४ वर्ष तक हुए और दिगम्बर परंपरा दस पूर्वधर का समय वीर निर्वाण सं. २४५ तक ही मानती है। श्वेताम्बर परम्परा एक पूर्व की परंपरा को देवर्द्धिगणी के समय तक मानती है और एकादश अंगों को वर्तमान काल तक सुरक्षित मानती है जबकि दिगम्बर परंपरा वीर-निर्वाण ६ ३ वर्ष के पश्चात् आगम-साहित्य का पूर्णतः नाश स्वीकार करती है।

आगम-साहित्य का मौलिक रूप

वर्तमान में उपलब्ध आगम-साहित्य मौलिक है या नहीं? इसके सम्बन्ध में जैन-परंपरा में दो विचारधाराएँ हैं— १ दिगम्बर विचारधारा और २ श्वेताम्बर विचारधारा। दिगम्बर विचारधारा के अनुसार श्रमण भगवान महावीर के निर्वाण के ६ ३ वर्ष के बाद आगम-साहित्य का सर्वथा लोप हो गया। वर्तमान में उपलब्ध एक भी आगम मौलिक नहीं है।

श्वेताम्बर परंपरा की मान्यता के अनुसार आगम-साहित्य का बहुत बड़ा भाग लुप्त हो गया परन्तु उसका पूर्णतः लोप नहीं हुआ। उसका कुछ अंश आज भी विद्यमान है। द्वादशांगी में से एकादश अंग वर्तमान में विद्यमान हैं और पाटलिपुत्र मथुरा एवं वल्लभी में उन्हें व्यवस्थित कर दिया गया।

इममे कोई सन्देह नही है कि विभिन्न समयो मे हुई विभिन्न वाचनाओ मे आगम-माहित्य मे कुछ परिवर्तन भी हुआ है। स्थानाग और ममवायाग मे जोडे गए कुछ पाठ तो स्पप्ट रूप से उत्तरकालीन परिलिक्षित होते हैं। सात निह्नव और नव गणो का उल्लेख स्पप्ट रूप मे भगवान महावीर और सुधर्मा गणधर के बाद का है और भी कई स्थल ऐमे है, जो बाद मे सख्या की दृप्टि से उनके साथ जोड दिए गए हैं। भगवती मूत्र और प्रश्न व्याकरण-सूत्र का विषय वर्णन जैमा था, वर्तमान में पूर्णत उसी रूप मे उपलब्ध नही होता। इतना होने पर भी हम यह नही कह सकने कि अग-माहित्य मे मौलिकता का मर्वथा अभाव है। उसमे बहुत भाग मौलिक है और भापा एव शैली की अपेक्षा से वह प्राचीन भी है। आचाराग का प्रथम श्रुतस्कध भापा एव शैली की दृप्टि से सब अगो से भिन्न है और आगम-साहित्य मे मबसे प्राचीन है। वर्तमान युग के भापा शास्त्री और पाश्चात्य एव पौर्वात्य विद्वान उसे ईसा से चौथी-पाँचवी शताब्दी पहले की रचना स्वीकार करते हैं। सूत्रकृताग, स्थानाग, भगवती आदि अग-सूत्र भी काफी प्राचीन हैं। इतना तो निश्चित रूप से कहा जा मकता है कि आगम का मूल रूप वर्तमान मे भी सुरक्षित है।

आगम-साहित्य मे अनुयोग-व्यवस्था

आगम-युग मे अग-माहित्य का नय के आधार मे अध्ययन करने की परपरा रही है। प्रत्येक सूत्र एव पद को नय की अपेक्षा से लगाया जाता था। परन्तु दृप्टिवाद का लोप होने के बाद नय के स्थान मे अनुयोग की परपरा चालू की गई। अनुयोग का अर्थ है—सूत्र और अर्थ का उचित सम्बन्ध। ये चार प्रकार के हैं—१ चरणकरणानुयोग २ धर्मकथानुयोग ३ गणितानुयोग और ४ द्रव्यानुयोग। आचार्य आयव्रज तक अनुयोगो के प्रतिपादन की कोई व्यवस्था नही थी। प्रत्येक मूत्र के साथ चारो अनुयोगो का प्रतिपादन किया जाता था। इममे शिप्य एव गुरु दोनो को अध्ययन-अध्यापन करवाने मे कठिनता पडती थी। इसलिए आचार्य आर्यरक्षित ने अनुयोग प्रतिपादन की पद्धित मे परिवर्तन किया। आर्य रक्षित के चार प्रमुख शिष्य थे—१ दुर्बलिका पुष्य, २ फल्गुरक्षित, ३ विन्ध्य और ४ गोष्ठामाहिल। उनके शिष्य परिवार मे विन्ध्य प्रवल मेधावी था। उसने आचाय मे प्रार्थना की कि सहपाठ मे बहुत देर लगती है, अत ऐसी व्यवस्था करें कि मुझे पाठ शीघ्र मिल जाए। आचाय ने उसके अध्ययन का भार दुवलिका पुष्य को सौपा। कुछ दिन तक अध्ययन चलता रहा। परन्तु अध्ययन कराने मे ही अधिक समय लग जाने के कारण दुवलिका पुष्य अपना स्वाध्याय व्यवस्थित रूप से चालू नही रख सका। इससे वह नवम पूर्व को भूलने लगा। अत उमने आर्य रक्षित से कहा कि यदि मैं इसे वाचना दूंगा, तो मेरा नवम पूव विस्मृत हो जाएगा। अपने शिष्य की यह स्थिति देखकर आय रक्षित ने सोचा कि स्मृति मन्द हो रही है। अत प्रत्येक सूत्र मे चारो अनुयोगो को धारण करने वाले श्रमण अब अधिक लम्बे समय तक नही रहेगे। इमलिए आर्यरक्षित ने पूरे श्रुत-माहित्य को ही चार भागो मे विभक्त कर दिया। इमसे आगमो की व्याख्या करने मे दुरूहता नही रही। चार अनुयोगो मे आगमों का विभाग निम्न प्रकार से किया गया—

१ चरण-करणानुयोग	कालिक सूत्र
२ धर्मकथानुयोग	उत्तराध्ययन ऋषि भाषित आदि
३ गणितानुयोग	सूर्य-प्रज्ञप्ति आदि
४ द्रव्यानुयोग	दृष्टिवाद

दिगम्बर परंपरा में भी चार अनुयोगों का वर्णन मिलता है परन्तु वह कुछ रूपान्तर से उपलब्ध होता है। उनके नाम निम्न हैं —

१ प्रथमानुयोग २ करणानुयोग ३ चरणानुयोग और ४ द्रव्यानुयोग।

श्वेताम्बर परंपरा के अनुसार चार अनुयोगों के विषय निम्न हैं —

१ चरणकरणानुयोग	आचार
२ धर्मकथानुयोग	चरित दृष्टान्त कथा आदि
३ गणितानुयोग	गणित काल
४ द्रव्यानुयोग	द्रव्य तत्त्व

दिगम्बर परंपरा के अनुसार अनुयोगों का विषय निम्न प्रकार से है —

१ प्रथमानुयोग	महापुरुषों के जीवन चरित
२ करणानुयोग	लोकालोक-विभक्ति काल गणित
३ चरणानुयोग	आचार,
४ द्रव्यानुयोग	द्रव्य तत्त्व

दिगम्बर परम्परा मे आगम-साहित्य को सर्वथा लुप्त मानते हैं। इसलिए वर्तमान मे व निम्न ग्रन्थों को निम्न अनुयोगों मे समाविष्ट करते हैं—

१ प्रथमानुयोग	पुराण महापुराण
२ करणानुयोग	त्रिलोक-प्रज्ञप्ति त्रिलोक-सार
३ चरणानुयोग	मूलाचार
४ द्रव्यानुयोग	प्रवचनसार, गोम्मटसार आदि[2]

---

[1] दशवैकालिक नियुक्ति, ३

[2] रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अधिकार १ पृष्ठ ७१-७३

लेखन-परम्परा

आगम-साहित्य का अनुशीलन-परिशीलन करने मे यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखन कला का प्रार्द्‌भाव प्रागैतिहासिक युग मे हो गया था। भगवान् ऋषभदेव ने कर्म-भूमि के प्रारम्भ मे जनता को असि, कसि और मषि की कला सिखाई। तलवार अर्थात् राज्य और शासन करने की कला के साथ कृषि और लेखन की कला का भी उन्होंने शिक्षण दिया। भगवान् ऋषभदेव द्वारा सिखाई गई ७२ कलाओ मे लेख-कला को सर्व-प्रथम स्थान दिया गया है।[१] भगवान ने अपनी ज्येष्ठ पुत्री ब्राह्मी को लिपि एव लेखन कला की शिक्षा दी थी, उसे १८ लिपियाँ सिखाईं[२] और उसी के नाम पर लिपि को ब्राह्मी लिपि की सज्ञा दी गई। उक्त वर्णनो मे प्रयुक्त लेख-कला, लिपि एव मषि शब्द लेखन कला की परम्परा को कर्म-युग के प्रारम्भ तक ले जाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रज्ञापना सूत्र मे भी १८ लिपियो का उल्लेख मिलता है।[३] भगवती सूत्र मे मगलाचरण के रूप मे ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया गया है।[४] नन्दी सूत्र मे भी अक्षर-श्रुत तीन प्रकार का बताया है—१ सज्ञा-अक्षर, २ व्यजन-अक्षर, और ३ लब्धि-अक्षर।[५] इसमे प्रयुक्त सज्ञा-अक्षर का अर्थ है—अक्षर की आकृति, सस्थान और उस आकृति को दी गई 'अ, आ' आदि की सज्ञा। इससे उस युग मे लिपि के होने का प्रमाण मिलता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल मे लिखने की परम्परा रही है। परन्तु हम यह निश्चय पूर्वक नही कह सकते कि उस युग मे लेखन के साधन क्या थे। शिलापट एव गुफाओ की दीवारो पर अकित शब्द तो अवश्य मिलते हैं। परन्तु इसके अतिरिक्त और कोई सामग्री उपलब्ध हुई हो ऐसा ज्ञात नही होता। परन्तु आगमो मे पुस्तको एव लेखन सामग्री के सम्बन्ध मे अनेक साधनो का वर्णन अवश्य मिलता है। रायप्रश्नीय सूत्र मे कम्बिका—कामी, मोरा, गाँठ, लिपियासन—मषि-पात्र—दवात, छन्दन—ढक्कन, साकली, मषि और लेखनी का उल्लेख मिलता है। प्रज्ञापना-सूत्र मे 'पोत्थारा' शब्द का प्रयोग मिलता है, जिसका अर्थ है—पुस्तक लिखने वाला लेखक।[६] उक्त आगम मे पुस्तक लेखन को शिल्पआर्य मे समाविष्ट किया है और अर्धमागधी भाषा एव ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करने वाले लेखक को भाषा आर्य कहा है।[७] स्थानाग सूत्र मे पाच प्रकार की पुस्तको का उल्लेख किया है—१ गण्डी, २ कच्छवी, ३ मुष्ठि, ४ सपुट फलक, और ५ सृपाटिका।[८] दशवैकालिक-सूत्र की

---

[१] समवायांग सूत्र, ७२

[२] विशेषावश्यक भाष्य वृत्ति, १३२

[३] प्रज्ञापना सूत्र, पद १

[४] नमो बभीए लिविए —भगवती सूत्र

[५] नन्दी सूत्र, ३८, मूल सुत्ताणि, पृ ३०६

[६] प्रज्ञापना सूत्र, पद १

[७] वही

[८] स्थानाग सूत्र, स्थान ५

टीका में आचार्य हरिभद्र ने और निशीथ चूर्णिकार ने भी इसका उल्लेख किया है।[1] टीकाकार ने पुस्तक का अर्थ ताड़पत्र, संपुट का अर्थ पत्र समूह और कर्म का अर्थ मषि एवं लेखनी से लिखना किया है। और पोत्थकार या पोत्थकार शब्द का अर्थ टीकाकार ने पुस्तक के माध्यम से जीविका चलाना किया है।

आगम के अतिरिक्त भी प्राचीन युग में लेखन कला के प्रमाण मिलते हैं। बौद्ध और वैदिक साहित्य इसके साक्षी हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक उल्लेख भी उपलब्ध होते हैं। वीर-निर्वाण की द्वितीय शताब्दी में आक्रान्ता सम्राट् सिकन्दर के सेनापति नियार्कस ने अपनी भारत-यात्रा के वर्णन में लिखा है — भारतवासी लोग कागज बनाते थे। ईसवी सन् की दूसरी शताब्दी में लिखने के लिए ताड़-पत्र और चतुर्थ शताब्दी में भोज-पत्र का उपयोग किया जाता था। वर्तमान काल में उपलब्ध लेखन साहित्य में ईसा की पांचवीं शताब्दी के लिखित पत्र मिलते हैं। उक्त अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि भारत में लिखने की कला प्राचीनतम है और हमारे प्रागैतिहासिक पूर्वज लेखन कला से परिचित थे। परन्तु फिर भी इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि उस समय आगम-साहित्य को लिपि-बद्ध करने की परम्परा नहीं थी।[4] उस युग में श्रुत-साहित्य कण्ठस्थ करने एवं करवाने की परम्परा रही है। जैनों में ही नहीं वैदिक एवं बौद्ध सम्प्रदायों में भी यही परम्परा थी और इसी कारण तीनों परम्पराओं में आगम के लिए श्रुत, श्रुति एवं सुत्त शब्द का प्रयोग हुआ।

आगम-लेखन युग

जैन परम्परा की मान्यता के अनुसार ज्ञान का विशाल पुञ्ज चौदह पूर्वों में संचित है। वह विराट साहित्य कभी लिपिबद्ध नहीं किया गया। परन्तु आचार्यों ने उसके लिए यह कल्पना अवश्य की कि वह अमुक-अमुक परिमाण में स्याही से लिपिबद्ध किया जा सकता है। चौदह पूर्व तो क्या आगम युग में एकादश अंग भी लिपिबद्ध नहीं किए गए। उस युग में ज्ञान को अक्षरों में अंकित करने की अपेक्षा उसे मस्तिष्क एवं हृदय में अंकित करने का अधिक महत्त्व था। लिखने में समय अधिक लगता था और लिखित ग्रन्थों का प्रतिलेखन करने एवं उन्हें सम्भालने में भी समय व्यय करना पड़ता था। और

दशवैकालिक टीका, पृ २५, निशीथ चूर्णि उ १२

भारतीय प्राचीन लिपि माला, पृ २

वही

वही

आगम-साहित्य के लिखने की परम्परा का संकेत अनुयोग-द्वार सूत्र में मिलता है। उसमें श्रुत-अधिकार में लेखन सामग्री के द्वारा लिखित पत्रों को द्रव्य-श्रुत कहा है। और इसका रचनाकाल वीर-निर्वाण की ९ वीं शताब्दी का अन्तिम समय माना जाता है। इससे पहले आगम-लिखने की परम्परा का संकेत नहीं मिलता।

लिखित ग्रन्थ वढ जाने से स्वाध्याय मे भी विघ्न पडता था। साधक स्वाध्याय, चिन्तन-मनन और निदिध्यासन की परम्परा को छोडकर पुस्तक-पन्नो के पीछे लग जाता। इसी कारण लेखन परम्परा को महत्व नही दिया गया। सत्य तो यह है कि उस युग मे लेखन परम्परा को दोषयुक्त माना गया। वृहत्कल्प और निशीथ भाष्य मे स्पष्ट शब्दो मे कहा गया कि "श्रमण जितनी वार पुस्तक को खोलता और बाँधता है या जितने अक्षर पन्नो पर अकित करता है, लिखता है, उसे उतने ही चतुर्लघुको का प्रायश्चित आता है।[1] इसमे यह स्पष्ट होता है कि भाष्यकार के युग तक आगम लिखना दोष रूप माना जाता था। इसके वाद भी निकट भविष्य मे लिखने की परम्परा को कोई उत्साह या प्रेरणा मिली हो ऐसा उल्लेख नही मिलता।

आचाय भद्रवाहु के पश्चात् द्वितीय आगम वाचना मथुरा मे हुई, इसका समय वीर-निर्वाण ८२७ से ८४० है और करीव इसी समय आचार्य नागार्जुन के सान्निध्य मे एक वाचना वल्लभी मे भी हुई और दोनो वाचनाओ मे एकादश अगो के पाठो को व्यवस्थित किया गया। इसी समय आचार्य आर्य-रक्षित ने अनुयोगद्वार सूत्र की रचना की। इसमे द्रव्य श्रुत के लिए 'पत्तय-पोत्थय लिहिअ'[2] लेखन सामग्री के द्वारा पन्नो पर लिखित आगम शब्द का प्रयोग किया है। इससे पहले किसी आगम के लिखने का प्रमाण नही मिलता। इससे हम ऐसा अनुमान कर सकते हैं कि भगवान् महावीर के निर्वाण की ६ वी शताब्दी के अन्त मे आगमो के लिखने की परम्परा चल पडी थी। परन्तु आगमो को लिपिवद्ध करन का स्पष्ट उल्लेख आचाय देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण के सान्निघ्य मे वल्लभी म हुई तृतीय आगम-परिषद् के समय का मिलता है।

साधु-साध्वियो की स्मृति का मन्द होते देखकर देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने आगमो को लिखने का पूरी तरह प्रयत्न किया, ऐसा प्रतीत होता है। इसके पीछे उनका एक ही पावन-पुनीत ध्येय था कि समय की गति को देखकर भी न लिखने की रूढ परम्परा को ही चालू रखा गया, तो एक दिन श्रुत-साहित्य का ही लोप हो जायगा। अत उस महापुरुष ने युग के अनुरूप लेखन परम्परा को स्थापित करने की दिशा मे एक क्रान्तिकारी कदम उठाया। उसके वाद लेखन कला का निरन्तर विकास होता रहा। आगम ही क्या, निर्युक्त, चूर्णि, भाष्य, टीकाएँ आदि भी लिखी जाने लगी और आचार्यो ने स्वतन्त्र रूप से सूत्र एव दशन साहित्य भी लिखा। वतमान युग का साधक तो लेखन से मुद्रण तक पहुच गया है और प्रायश्चित्त की वात विस्मृति के एक अँधेरे कोने मे ढकेल दी गई है।

---

[1] जत्तियमेत्ता वारा, उ मु चई-बधई व जति वारा।
जति अक्खराणि लिहति व तति लहुँगा ज च आवज्जे॥
—वृहत्कल्प भाष्य, उ ३, गाथा ३८३१, निशीथ भाष्य, उ १२, गाथा ४००८

[2] अनुयोग-दार सूत्र, श्रुत-अधिकार ३७

आगमों का वर्गीकरण

आगमों में द्वादशांगी को तीर्थंकर प्रणीत कहा गया है। भगवान् महावीर के युग में द्वादशांगी के अतिरिक्त आगमों के अन्य भागों का उल्लेख नहीं मिलता। उनके निर्वाण के बाद अन्य आगमों की रचना की गई तब यह प्रश्न उठा कि इन आगमों को क्या संज्ञा दें उस समय आगमों को दो भागों में विभक्त किया गया—१ अंग-प्रविष्ट, और अंग-बाह्य। दिगम्बर साहित्य में और स्थानांग एवं नन्दी सूत्र में आगमों का यही वर्गीकरण मिलता है।

परन्तु जब पूर्व-साहित्य का लोप होने लगा और स्थविरों ने पूर्वों एवं अंग साहित्य में से अन्य आगमों का निर्यूहण किया और कुछ आगमों की रचना की तब उन्हें भिन्न संज्ञा दी गई। मूल वर्गीकरण तो अंग और अंग बाह्य के रूप में ही रहा परन्तु अंग-बाह्य को चार भागों में विभक्त किया गया—१ उपांग २ छेद ३ मूल और ४ आवश्यक।

आगमों का वर्गीकरण करते समय आगम-पुरुष की कल्पना की गई और अंग-प्रविष्ट को पुरुष के अंग—स्थानीय और उपांगों को उपांग-स्थानीय माना गया। पुरुष के दो पैर, दो जंघाएँ, दो उरु, दो गात्रार्ध, दो बाहु, ग्रीवा और सिर—ये १२ अंग होते हैं। वैसे श्रुत-पुरुष के आचारांग आदि १२ अंग हैं। कर्ण नासिका चक्षु हाथ आदि उपांग हैं। श्रुत-पुरुष के भी औपपातिक आदि द्वादश उपांग हैं। द्वादश अंग और द्वादश उपांग साहित्य का विवरण निम्न है—

	अंग	उपांग
१	आचारांग	औपपातिक
२	सूत्रकृतांग	राजप्रश्नीय
३	स्थानांग	जीवाभिगम
४	समवायांग	प्रज्ञापना
५	भगवती	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
६	ज्ञातृधर्मकथा	सूर्य प्रज्ञप्ति
	उपासकदशांग	चन्द्र प्रज्ञप्ति
८	अन्तकृद्दशांग	कल्पिका
९	अनुत्तरोपपातिक दशांग	कल्पावतंसिका

—

पायदुगं जंघोरू गायदुगद्धं तु दोय बाहू य।
गीवा सिरं च पुरिसो बारस अंगो सुयविसिट्ठो॥ —नन्दी सूत्र, टीका—आचार्य मलयगिरि ४३

१०	प्रश्न-व्याकरण	पुष्पिका
११	विपाक	पुष्प-चूलिका
१२	दृष्टिवाद	वृष्णि-दशा

उपाग-साहित्य का आचार्य उमास्वाति ने अपने भाष्य मे उल्लेख किया है और छेद सूत्रो का भी उनके भाष्य मे उल्लेख मिलता है। अत उपाग और छेद सूत्रों का वर्गीकरण आचार्य उमास्वाति के पूर्व ही हो गया था। मूल आगमो का नाम करण सबसे अर्वाचीन है, ऐसा प्रतीत होता है। छेद और मूल आगमो की सख्या मे सभी आचाय एकमत नही हैं। कुछ आचार्य छेद-सूत्रो की सख्या चार मानते हैं— १ निशीथ, २ व्यवहार, ३ बृहत्कल्प और ४ दशा-श्रुत-स्कध। कुछ आचार्य महानिशीथ और जीत कल्प को मिलाकर छेद-सूत्रो की सख्या छह मानते है और कुछ जीत कल्प के स्थान मे पञ्चकल्प को छेद-सूत्र मानते हैं।

मूल सूत्रो की सख्या मे भी एकरूपता नही है। कुछ आचार्य चार मूल-सूत्र मानते है—१ दश-वैकालिक, २ उत्तराध्ययन, ३ नन्दी और ४ अनुयोग द्वार। कुछ आचाय आवश्यक और ओघ-निर्युक्ति को भी मूल-सूत्रो मे सम्मलित करके उनकी सख्या छह मानते हैं। कुछ ओघ-निर्युक्ति के स्थान मे पिण्ड-निर्युक्ति को मूल सूत्र मानते हैं। कई आचार्य नन्दी और अनुयोग द्वार को मूल सूत्र नही मानते। उनकी दृष्टि मे ये दोनो चलिका-सूत्र है। इस तरह अग-बाह्य आगमो का विभिन्न समयो मे विभिन्न रूप से वर्गीकरण एव नामोल्लेख होता रहा है।

वर्तमान मे आगम-साहित्य और उनकी सख्या

यह हम बता चुके हैं कि अग-साहित्य के प्रणेता तीर्थकर है और उनके सूत्रकार गणधर है। अग बाह्य आगमो के रचयिता स्थविर हैं। जैन-परम्परा मे आगमो को लिखने की नही, स्मृति मे रखने की, कण्ठस्थ करने की परम्परा रही है। जब विस्मृति होने लगी, तो आगमो के प्रवाह को प्रवहमान रखने के लिए पाटलिपुत्र, मथुरा और वल्लभी मे श्रमण-सघ का मिलन हुआ और तीनो वाचनाओ मे आगम-पाठों को व्यवस्थित किया गया। अन्तिम वाचना के समय देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने वल्लभी मे सम्मिलित श्रमण सघ से प्राप्त पाठो को व्यवस्थित रूप से सपादित करके उन्हे लिपिबद्ध कर दिया। अत आगम-साहित्य के लिपिकार या सपादक देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण को माना गया है।

नन्दी सूत्र की रचना देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने की। इसमे पाँच ज्ञान की व्याख्या की गई है और आगम साहित्य का भी परिचय दिया गया है। नन्दी सूत्र मे आगम साहित्य की सूची निम्न प्रकार से दी गई हैं—

नन्दी सूत्र मे आगम-साहित्य की जो सूची दी गई है, वे सव आगम वर्तमान मे उपलब्ध नहीं हैं। अत वर्तमान मे जो आगम उपलब्ध हैं, उनके अनुसार आगमो को प्रामाणिक मानने की परम्परा मे एकरूपता नही है। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज उपलब्ध आगमो मे कुछ निर्युक्तियो को जोडकर ४५ आगमों को प्रामाणिक मानती है। मूर्तिपूजक सप्रदाय मे एक परपरा आगमो की सख्या ८४ भी मानती है। स्थानकवासी और तेरहपथ परपरा ३२ आगमो को प्रामाणिक मानती है। उनमे भी दोनो परपराएँ ११ अग-सूत्रों को स्वत प्रमाण मानती हैं और १२ उपाग, ४ मूल, ४ छेद और आवश्यक, इन २१ आगमो को परत प्रमाण मानती हैं।

४५ आगमो के नाम

एकादश-अग

१	आचारांग	२	सूत्रकृतांग	३	स्थानांग
४	समवायांग	५	भगवती	६	ज्ञातृधर्मकथा
७	उपासकदशा	८	अन्तकृद्दशा	९	अनुत्तरौपपातिक
१०	प्रश्न-व्याकरण	११	विपाक		

द्वादश उपाग

१	औपपातिक	२	रायप्रश्नीय	३	जीवाभिगम
४	प्रज्ञापना	५	जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति	६	सूर्य-प्रज्ञप्ति
७	चन्द्र-प्रज्ञप्ति	८	निरयावलिका	९	कल्पवतसिका
१०	पुष्पिका	११	पुष्प-चूलिका	१२	वृष्णिदशा

छह मूल सूत्र

१	आवश्यक	२	दशवैकालिक	३	उत्तराध्ययन
४	नन्दी	५	अनुयोगद्वार	६	पिण्ड-निर्युक्ति या ओघ-निर्युक्ति

छह छेद सूत्र

१	निशीथ	२	महा-निशीथ	३	बृहत्कल्प
४	व्यवहार	५	दशा-श्रुतस्कन्ध	६	पचकल्प

स्थानकवासी और तेरहपन्थ सम्प्रदाय द्वारा मान्य बत्तीस आगमो के नाम

श्वेताम्बर परपरा की तीनो सम्प्रदायो—१ मूर्तिपूजक, २ स्थानकवासी और तेरहपन्थ द्वारा मान्य आगम साहित्य के नामो का ऊपर उल्लेख कर दिया है। अब निम्न पक्तियो मे ४५ आगमो का सक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है, जिससे आगमो मे वर्णित एव चर्चित विषय का पाठको को परिचय मिल जाए।

१ आचारांग-सूत्र

आचाराग-सूत्र का द्वादशागी मे या श्रुत-साहित्य मे मूर्धन्य स्थान है। प्रस्तुत आगम मे आचार का वर्णन है और आचार साधना का प्राण है, मुक्ति का मूल है। इसलिए आगम-साहित्य के व्याख्याकारो ने इसे अग-साहित्य का सार, निचोड या नवनीत कहकर इसके महत्व को स्वीकार किया है।[1] भाषा, शैली एव विषय की दृष्टि से भी यह सब आगमो से प्राचीन एव महत्वपूर्ण प्रतीत होता है पौर्वात्य विद्वानो ने ही नही, बल्कि डा० हरमन याकोबी और शुब्रिग जैसे पाश्चात्य विद्वानो ने भी इसके महत्व को स्वीकार किया है।

---

[1] अगाणा कि सारो ? आयारो। —आचाराग निर्युक्ति

परिज्ञा म शस्त्रो का परित्याग करना चाहिए। वस्तुत इस अध्ययन मे भगवान् ने नि शस्त्रीकरण का उपदेश दिया है। उन्होंने साधना-पथ पर गतिशील साधक को द्रव्य और भाव—तलवार आदि द्रव्य हथियारो एव राग-द्वेष आदि भाव शस्त्रो के परित्याग करने की वात कही है। जब तक साधक शस्त्रो के प्रयोग का त्याग नही करेगा, तब तक विश्व मे उसे शान्ति नही मिल सकती।

प्रथम अध्ययन के सात उद्देश है। प्रथम उद्देश मे समुच्चय रूप से जीव हिंसा से विरत होने का उपदेश दिया है। शेष छह उद्देशो मे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस काय के जीवो का परिज्ञान कराया है और साधक को यह वोध कराया गया है कि इन योनियो मे तू स्वय उत्पन्न हो आया है। जगत के सभी जीव तुम्हारे जातीय भाई है। उन सब मे तुम्हारे जैसी ही चेतना शक्ति है, उन्हे भी तुम्हारे जैसा ही सुख-दुख का सवेदना होता है। अत किसी भी तरह के शस्त्र के द्वारा तुम्हे उनका वध नही करना चाहिए। उन्हे ताप-परिताप नही देना चाहिए। उन्हे वन्धन मे नही वान्धना चाहिए, गुलाम नही वनाना चाहिए।

द्वितीय अध्ययन का नाम लोक-विजय है। यह छह उद्देशो मे विभक्त है। इसमे यह वताया गया है कि व्यक्ति किस प्रकार से ससार मे आवद्ध होता है और कैसे छुटकारा पाता है। इसके छह उद्देशो मे क्रमश ये भाव वताए है—१ स्वजन-स्नेहियो के साथ निहित राग-भाव एव आसक्ति का परित्याग करना। २ सयम-साधना मे प्रविष्ट होने वाले साधक को शिथिलता का परित्याग करना। ३ अभिमान और धन-सम्पति मे सार दृष्टि नही रखना। ४ भोगासक्ति से दूर हटना। ५ लोक के आश्रय से सयम का पालन करना। ६ लोक के आश्रय से सयम का निर्वाह होने पर भी लोक मे ममत्व भाव नही रखना।

लोक शब्द की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की गई है। परन्तु प्रस्तुत मे लोक का अर्थ है—ससार। वह दो प्रकार का है—१ द्रव्य लोक और २ भाव लोक। जिस क्षेत्र मे मनुष्य, पशु-पक्षी, देव-नारक आदि रहते हैं, उसे द्रव्य लोक कहते है और कषायो को भाव लोक कहते है। वस्तुत कषाय लोक ही द्रव्य लोक मे परिभ्रमण का मूल कारण है। इसीलिए प्रस्तुत अध्ययन के प्रारम्भ मे ससार की यह परिभाषा दी है—जो गुण है, वे ही मूल स्थान हैं और जो मूल स्थान है, वे गुण है। इस गभीर वाक्य का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि जहाँ विषय-कषाय है, वहाँ ससार है और जहाँ ससार है, वहाँ विषय-कषाय है। अत विषय-कषाय पर विजय पाने वाला साधक ही सच्चा विजेता है।

तृतीय अध्ययन का नाम शीतोष्णीय है। प्रस्तुत मे शीत और उष्ण का अर्थ है—अनुकूल और प्रतिकूल परीषह। स्त्री और सत्कार परीषह को शीत और शेष २० परीषहो को उष्ण कहा है। साधना के मार्ग मे कभी अनुकूल परीषह उत्पन्न होते है, तो कभी प्रतिकूल। साधु को चाहिए कि अनुकूल एव प्रतिकूल सब तरह के परीषहो को समभाव पूर्वक सहन करे। परीषहों के उत्पन्न होने

पर वह साधना के क्षेत्र से पलायन न करे, प्रत्युत धैर्य-पूर्वक उन्हें सहते हुए संयम का परिपालन करे।

यह अध्ययन चार उद्देशों में विभक्त है। इसमें साधक को सदा जागृत रहने का उपदेश दिया गया है। भगवान् महावीर का यह वज्र-आघोष स्पष्ट रूप से सुनाई दे रहा है—"सुषुप्त साधक मुनि नहीं है क्योंकि मुनि सदा-सर्वदा जागृत रहता है।"[1] वह कभी भी मोह-निद्रा में नहीं सोता है, प्रमाद और आलस्य में निमज्जित नहीं रहता है।

चतुर्थ-अध्ययन का नाम सम्यक्त्व है। इसके चार उद्देश हैं। सम्यक्त्व का अर्थ है—श्रद्धा निष्ठा विश्वास। प्रश्न हो सकता है कि साधक किस पर श्रद्धा करे? इस अध्ययन में बताया गया है—'अतीत अनागत एवं वर्तमान में होने वाले समस्त तीर्थंकरों का एक ही उपदेश रहा है कि सर्व-प्राण सर्व-भूत सर्व जीव और सर्व-सत्त्व की हिंसा मत करो उन्हें पीड़ा एवं सन्ताप-परिताप मत दो। यही धर्म ध्रुव है नित्य है शुद्ध है शाश्वत है।'[2] अतः सम्यक्त्व का अर्थ है—अहिंसा दया सत्य आदि पर श्रद्धा-निष्ठा रखना एवं यथाशक्ति उसे आचरण में उतारने का प्रयत्न करना।

पञ्चम अध्ययन लोकसार है। वस्तुतः लोक में सारभूत तत्त्व है तो केवल धर्म ही है। धर्म का सार ज्ञान है ज्ञान का सार संयम है और संयम का सार निर्वाण है। प्रस्तुत अध्ययन के छह उद्देशों में इसी बात का विस्तृत विवेचन किया गया है।

षष्ठम अध्ययन का नाम धुत है। इसके पाँच उद्देश हैं। धुत का अर्थ है—वस्तु पर लगे हुए मल को दूर करके वस्तु को साफ करना। प्रस्तुत अध्ययन में तप-संयम की साधना के द्वारा आत्मा पर लगे हुए कर्म मल को दूर करके आत्मा के शुद्ध रूप को प्रकट करने की प्रक्रिया बताई है।

सप्तम अध्ययन का नाम महापरिज्ञा है। इसके सात उद्देश हैं। आचार्य शीलांक का कहना है कि इसमें मोह के कारण उत्पन्न होने वाले परिषहों से बचने एवं मन्त्र-तन्त्र से अलग रहने का उपदेश दिया गया है। वर्तमान में यह अध्ययन उपलब्ध नहीं है।

अष्टम अध्ययन विमोक्ष आठ उद्देशों में विभक्त है। इसमें कल्प्य-अकल्प्य वस्तुओं का वर्णन किया गया है और समान आचार वाले साधु को आहार-पानी से सेवा करने और असमान आचार वाले की सेवा न करने का उपदेश दिया गया। और हर परिस्थिति में संयम-साधना में दृढ़ रहने का उपदेश दिया है।

---

[1] सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरंति।—आचारांग, १ ३ १, १

[2] आचारांग १ ४ १ १

नवम अध्ययन के चार उद्देश हैं। इसमें एक भी सूत्र नही है। गाथाओ मे भगवान् महावीर की साधना का सजीव वर्णन किया है।

द्वितीय-श्रुतस्कध

इसमे चार चूलिकाएँ और १६ अध्ययन हैं। प्रथम अध्ययन के ग्यारह, द्वितीय के तीन, तृतीय के तीन, चतुर्थ से लेकर सप्तम अध्ययन तक प्रत्येक के दो-दो और शेप नव अध्ययनो मे एक-एक उद्देशक हैं।

प्रथम पिंडैपणा अध्ययन है, इसमे यह वताया गया है कि साधु को किस तरह का आहार लेना चाहिए और आहार के कितने दोप हैं। साधु उक्त दोपो से रहित आहार ग्रहण करे। इस अध्ययन मे कुछ अपवादो का भी उल्लेख है। जैसे—यदि दुर्भिक्ष आदि के अवसर पर गृहपति ने मुनि को आहार दिया और अपने द्वार पर अनेक भिक्षुओ को खडे देख कर यह कहा कि तुम यह सव आहार साथ वैठकर खा लेना या सव को वाँट देना। ऐसे जैन साधु अन्य सम्प्रदाय के साधुओ को आहार नही देते और न उनके साथ वैठकर खाते हैं। परन्तु द्वितीय श्रुतस्कध के दसवें उद्देश मे यह स्पप्ट आदेश दिया गया है कि ऐसे अपवाद मार्ग मे साधु—यदि सव भिक्षु चाहे कि साथ वैठ कर खा लें तो, सव के साथ वैठकर खा ले और यदि वे अपना विभाग चाहते हो, तो उन सवको वरावर विभाग कर दे। इसमे अन्य अपवादो का भी उल्लेख है और अपवाद को भी उत्सर्ग की तरह मार्ग माना है, उन्मार्ग नही। क्योकि अपवादो के लिए आगम मे कही भी प्रायश्चित का विधान नही है।

दूसरे अध्ययन मे शय्या के सम्वन्ध मे, तीसरे मे ईर्या—गमन करने के सम्वन्ध मे, चौथे मे भाषा के सम्वन्ध मे, पाँचवें मे वस्त्र, छट्ठे मे पात्र, सातवें मे मकान, आठवें मे खडे रहने के स्थान, नवमे मे स्वाध्याय भूमि, दसवें मे उच्चार-पासवण—मल-मूत्र त्यागने की भूमि आदि के सम्वन्ध मे वताया गया है कि उसे इनमे सदोपता से वचना चाहिए। इनमे भी कई स्थलो पर अपवाद मार्ग का उपदेश दिया है। चतुर्थ अध्ययन मे वताया है कि साधु ने विहार करते समय जगल मे मृग को जाते हुए देखा हो और उसके निकल जाने पर शिकारी वहाँ आ पहुँचे और मुनि से पूछे कि मृग किधर गया है, उस समय मुनि मौन रहे। यदि शिकारी के विवश करने पर उसे वोलना ही पडे, तो वह जानते हुए भी यह कहे कि मैं नही जानता —"जाण वा णो जाणति वदेज्जा।"

ग्यारहवें और बारहवें अध्ययन मे शब्द की मधुरता एव सौन्दर्य मे आसक्त नही होने का उपदेश दिया है। तेरहवें अध्ययन मे यह वताया है कि दूसरे व्यक्ति द्वारा की जाने वाली क्रिया मे मुनि को किस प्रकार अपनी प्रवृत्ति करनी चाहिए। चौदहवें अध्ययन मे वताया है कि मुनियो मे परस्पर होने वाली क्रियाओ मे उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए। पन्द्रहवें अध्ययन मे भगवान् महावीर के

जीवन और पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावनाओं का वर्णन है। सोलहवें अध्ययन में हित-प्रद शिक्षाएँ दी गई हैं।

२ सूत्रकृतांग-सूत्र

प्रस्तुत आगम में ज्ञान, विनय, क्रिया आदि दार्शनिक विषयों का और अन्य धर्मों एवं धर्मों एवं दार्शनिकों तथा धर्मवादियों की मान्यता का विवेचन है। इसमें श्रमण भगवान् महावीर के समय में प्रचलित ३६३ मतों-सम्प्रदायों[1] की मान्यता के आचार-विचार की जैन परम्परा के आचार-विचार के साथ तुलना की गई है और साथ में यह स्पष्ट कर दिया है कि अहिंसा, सत्य आदि महाव्रत धर्म के मूल हैं, धर्म के प्राण हैं। अतः साधक को अहिंसा आदि की साधना पर श्रद्धा-निष्ठा रखते हुए अपने साध्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए। उसे आठ प्रकार के—जाति मद, कुल मद, बल मद, रूप मद, तप मद, लाभ मद, अधिकार मद और ऐश्वर्य मद का परित्याग करके निरहंकार भाव से साधना करनी चाहिए। मद-अहंकार आत्मा को पतन के महागर्त में गिराता है। अतः साधक को अपने जीवन में अहंभाव को नहीं, विनय-नम्रता को स्थान देना चाहिए। वस्तुतः विनय धर्म का भूषण है, साधना का सर्व-श्रेष्ठ अलंकार है और समस्त सिद्धियों का दाता है।

प्रथम-श्रुतस्कन्ध

प्रस्तुत आगम भी दो श्रुतस्कंधों में विभक्त है। प्रथम-श्रुतस्कंध में १६ अध्ययन हैं। पहला समयाख्य अध्ययन है। इसमें स्व-मत और पर-मत का वर्णन है। इसमें पञ्च-महाभूतवादी (Materialists) आत्माद्वैतवादी (वेदान्ती) तज्जीव-तच्छरीरवादी (Other Materialists)—आत्मा और शरीर को एक मानने वाले, अक्रियावादी, आत्मषष्ठवादी, पञ्च-स्कन्धवादी, क्षणिकवादी (बौद्ध), ज्ञानवादी, विनयवादी, नियतिवादी (आजीवक), लोकवादी आदि परमत-मतान्तरों के सैद्धान्तिक एवं आचार सम्बन्धी दोषों एवं भूलों को बताकर स्व-मत अर्थात् अपने सिद्धान्त की स्थापना की है।

दूसरा वैतालीय अध्ययन है। इसमें हितप्रद और अहितप्रद मार्ग बताया गया है। साधक को हिंसा आदि दोषों से युक्त मार्ग का और प्रमाद भाव का त्याग करके शुद्ध संयम की साधना करनी चाहिए।

तीसरे अध्ययन का नाम उपसर्ग-परिज्ञा है। इसमें यह उपदेश दिया गया है कि साधक को शीत आदि अनुकूल एवं प्रतिकूल उपसर्गों को सहन करना चाहिए। माता-पिता एवं स्नेही-परिजनों के प्रेम भाव एवं विलाप आदि से विचलित होकर साधना पथ का त्याग नहीं करना चाहिए। उपसर्ग से होने वाले आध्यात्मिक एवं मानसिक विचार और कुवादियों एवं कुतर्कवादियों के कुतर्कों से व्याकुल होकर संयम-साधना से भ्रष्ट नहीं होना चाहिए। साधक को हर परिस्थिति में धैर्य एवं समभाव से समस्त परीषहों को सहन करना चाहिए और अपनी श्रद्धा-निष्ठा को सदा विशुद्ध रखना चाहिए।

---

[1] उक्त सूत्र में प्रचलित ३६३ मत ये हैं—१८० क्रियावादी, ८४ अक्रियावादी, ६७ अज्ञानवादी और ३२ विनयवादी। —सूत्रकृतांग

चतुर्थ अध्ययन स्त्री-परिज्ञा है। स्त्री—विपय-वामना के व्यामोह मे नही फँमना। जो साधक भोग-विलाम की आमक्ति मे आकर अपने पथ मे भ्रष्ट हो जाता है, वह सदा दु ख पाता है।

पाँचवें अध्ययन का नाम नरक-विभक्ति है। इसमे नरक एव नारकीय जीवन का वणन है। नरक में प्राप्त होने वाली वेदना एव दु खो को देख-समझकर माधक पर-धम एव सासारिक विषय-कपायो का त्याग करके स्व-धर्म स्वीकार करे।

छट्ठा वीर-स्तुति अध्ययन है। इसमे गणधर सुधर्मा स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर की स्तुति की है, उनका गुण-कीर्तन किया है।

सातवाँ कुशील-परिभाषा अध्ययन है। इसमे शुद्ध आचार से विपरीत यज्ञ-याग, स्नान, पचाग्नि आदि कुशील को धर्म मानने का निपेध किया है और बताया है कि इन मे धर्म मानने वाले ससार मे परिभ्रमण करते हैं। शुद्ध चरित्र इन से सर्वथा भिन्न है। साधक को शुद्ध-आचार का पालन करना चाहिए।

आठवाँ अध्ययन वीर्य अध्ययन है। इसमे बाल और पडित वीर्य—बल, शक्ति एव पराक्रम-पुरुपार्थ का वर्णन है।

नववें, दसवें और ग्यारहवें अध्ययन मे क्रमश धर्म, समाधि और मोक्ष-मार्ग का वर्णन है। इनमे इन्द्रियो के विपय एव कपाय भाव का त्याग करके आत्म-धर्म मे रमण करने का उपदेश दिया है।

बारहवाँ समवसरण अध्ययन है। इसमे क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी (Agnostics) और विनयवादी पर-मत के दोपो को दिखाकर स्व-दर्शन के मिद्धान्त को समझाया है।

तेरहवें से पन्द्रहवें तक के तीन अध्ययनो मे क्रमश यथा-तथ्य—धर्म के यथार्थ स्वरूप और पार्श्वस्थ साधुओ के स्वरूप, ग्रन्थ-परित्याग—परिग्रह के त्याग और आदान-समिति का वर्णन है। उक्त तीनो अध्ययनो मे शुद्ध चरित्र का वर्णन किया है।

सोलहवें अध्ययन का नाम गाथा है। इसमे माहण—ब्राह्मण, श्रमण, निर्ग्रन्थ और भिक्षु इन चारो का विस्तार से वर्णन किया है।

द्वितीय-श्रुतस्कध

दोनो श्रुतस्कधो के कर्ता एक नही हैं। प्रथम श्रुतस्कध गणधर कृत हैं, द्वितीय से प्राचीन है और मौलिक है। द्वितीय श्रुतस्कन्ध स्थविर-कृत है और प्रथम के साथ बाद मे जोडा गया है। इसमे सात अध्ययन हैं। प्रथम अध्ययन पौंडरीक है। इसमे बताया है कि क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवादी मुक्ति को प्राप्त करने का सकल्प करते हैं, परन्तु वे ममार से विरक्त होकर सयम का

पालन नहीं करते कामभोगों में लिप्त रहते हैं। अतः वे विषय भोग के पंक से छुटकारा नहीं पा सकते। जो साधक आरम्भ-परिग्रह से मुक्त है विषय-कषाय का परित्याग कर चुका है और काम भोगों को संसार का कारण समझता है वही संयम का शुद्ध पालन करके मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

दूसरा अध्ययन क्रिया स्थान है। इसमें बताया है कि जहाँ इच्छा है वहीं कषाय है और कषाय ही संसार है। अतः जहाँ इच्छा का अभाव है, वहाँ कषाय का भी अभाव है और कषायाभाव ही मोक्ष है। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन में यह बताया है कि साधक को सांसारिक क्रिया का त्याग करके ईर्यावही क्रिया को स्वीकार करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि साधक को वीतराग भाव को प्राप्त करना चाहिए।

तीसरा आहार-परिज्ञा अध्ययन है। इसमें शुद्ध एषणीय आहार ग्रहण करने का वर्णन किया है।

चौथा प्रत्याख्यान-परिज्ञा अध्ययन है। इसमें बताया है कि जब तक व्यक्ति किसी क्रिया का त्याग नहीं करता तब तक उसे वह क्रियाएँ लगती रहती हैं। अतः कर्म क्रिया से होने वाले कर्म-बन्ध एवं संसार-परिभ्रमण का ज्ञान करके सांसारिक क्रियाओं का त्याग करना चाहिए।

पाँचवाँ आचार-अनाचार श्रुत अध्ययन है। इसमें शुद्ध आचार और इसमें लगने वाले अनाचारों—दोषों का वर्णन है। साधक को अनाचारों से रहित शुद्ध-निर्दोष आचार का पालन करना चाहिए।

छठा आर्द्रकीय अध्ययन है। इसमें अन्य तीर्थिकों एवं अन्य धर्म के आचार्यों तथा साधुओं के साथ आर्द्रक कुमार की जो विचार-चर्चा हुई, उसका उल्लेख है।

सातवें नालन्दीय अध्ययन में श्रावक—गृहस्थ के आचार का वर्णन है। इसमें गृहस्थ जीवन का आदर्श बताया गया है।

३ स्थानांग-सूत्र

प्रस्तुत आगम में षट् द्रव्यों—१ धर्म २ अधर्म ३ आकाश ४ काल ५ जीव और ६ पुद्गल का वर्णन है। इनमें जीव को छोड़कर शेष पाँचों द्रव्य अजीव हैं। एक से लेकर चार तक के द्रव्य अरूपी हैं। काल को छोड़कर शेष पाँचों द्रव्य अस्तिकाय—प्रदेश समूह रूप से हैं। काल द्रव्य समूह रूप से नहीं है। धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है लोक परिमाण है वर्ण गन्ध रस स्पर्श से रहित है अरूपी है और जीव एवं पुद्गल की गति में सहायक द्रव्य है। अधर्मास्तिकाय का भी यही स्वरूप है इसमें केवल अन्तर इतना ही है कि यह जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक है। आकाशास्तिकाय भी एक द्रव्य है लोक-अलोक व्यापी है, वर्ण गन्ध रस और स्पर्श से रहित है, अरूपी है जीव और पुद्गल आदि पदार्थों को स्थान देता है अवकाश देना आकाश का गुण है। काल द्रव्य अनन्त है लोक व्यापी है वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श से रहित है, अरूपी है और नए पदार्थों को पुरातन बनाता है पुरानों को समाप्त

करता है। ये चारो अजीव द्रव्य हैं। जीव चेतना मे युक्त है, ज्ञानमय है। जीव द्रव्य अनन्त है, लोक व्यापी हैं, वर्ण, गध, रस, स्पर्श से रहित हैं, अरूपी है। पुगलास्तिकाय अनन्तानन्त पुदगल परमाणु है, लोक व्यापी है, वर्ण, गध, रस और स्पर्श मे युक्त हैं, सडन-गलन और विध्वश को प्राप्त होते है। यह भी अजीव है, इसे अन्य दर्शनो की भापा मे जड, प्रकृति और माया कहा गया है।

इसमे दस अध्ययन हैं। इन्हे स्थान कहते हैं और इन दस स्थानो मे जीव-अजीव आदि के भेद और उनके गुण-पर्यायो के भेदो की मख्याओ में गणना की हैं। यह मख्या एक से लेकर दस तक है। प्रथम स्थान में एक-एक सख्या वाले पदार्थ गिनाए हैं, दूसरे मे दो-दो मख्या वाले और इस तरह दशम स्थान मे दस-दस की मख्या वाले पदार्थों की गणना की है। बौद्धो के अगुत्तरनिकाय मे भी एक से लेकर दस-दस तक मख्याओ के पदार्थों की गणना की है। दोनो की वर्णन शैली एक-सी है।

४ समवायाँग-सूत्र

प्रस्तुत आगम स्थानाग की शैली मे रचा गया है। स्थानाग मे एक से लेकर दस तक सख्या के पदार्थों का वणन है आर इसमे एक से लेकर कोडा-कोडी सख्या तक जीव-अजीव के भेद और उनके गुण-पर्यायो का वणन है। और उस सख्या के समुदाय को समवाय सज्ञा दी है।

५ व्याख्या-प्रज्ञप्ति–भगवती-सूत्र

प्रस्तुत आगम का नाम व्याख्या-प्रज्ञप्ति है। व्याख्या का अथ है—विभिन्न प्रकार से किया गया कथन और प्रज्ञप्ति का अभिप्राय है—प्ररूपणा। यह आगम सब आगमो मे विशाल है। इसमे भिन्न-भिन्न समयो मे विभिन्न व्यक्तियो द्वारा पूछे गए प्रश्नो का भगवान् महावीर ने जो उत्तर दिया, उसका सकलन है। इसमे ३६,००० प्रश्नो के उत्तर है। इसमे प्रमुख प्रश्नकर्ता गौतम गणधर हैं। ऐसे गागेय अणगार, खधक सन्यासी, जयन्ती श्राविका आदि अनेक व्यक्तियो ने भगवान् से प्रश्न पूछे और उन्होने उनका समाधान किया। परन्तु इस आगम का अधिकाश भाग गौतम के प्रश्नो ने घेर रखा है। इसमे साधु-साध्वियो और श्रावक-श्राविकाओ के आचार, लोक-अलोक और पदार्थों के सम्बन्ध मे सूक्ष्म विचार चर्चा भी है। उस युग मे उठने वाले लोक-परलोक के अस्तित्व, नित्यत्व-अनित्यत्व, उसके परिणाम एव जीव आदि के अस्तित्व नास्तित्व पर गहराई से विचार किया गया है।

इसमे आजीविक आदि अन्यतीर्थियो और पाश्वपत्य—भगवान् पाश्वनाथ के श्रमणो का उल्लेख किया है। इसमे भगवान् महावीर के वैशालीय, निग्रन्थ आदि नामो का, इन्द्रभूति आदि ११ गणधरो, रोह, खदक, कात्याय, तिसय, नारदपुत्र, सामहस्ति, आनन्द, सुनक्षत्र, मागन्दिय पुत्र आदि श्रमणो और पोखलि, धम्मघोप, सुमगल आदि श्रमणोपासको के नामो का उल्लेख भी मिलता है। इसमे भगवान् महावीर से अलग होकर अपनी सम्प्रदायो की स्थापना करने वाले जमाली और गौशालक का भी विस्तार से उल्लेख मिलता है। इसमे गौशालक के द्वारा छोडी गई तेजोलेश्या से भगवान् के दो शिष्यो

पालन नहीं करते कामभोगों में लिप्त रहते हैं। अतः वे विषय भोग के पंक से उबर नहीं पा सकते। जो साधक आरम्भ-परिग्रह से मुक्त है, विषय-कषाय का परित्याग कर चुका है और काम भोगों को संसार का कारण समझता है वही संयम का शुद्ध पालन करके मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।

दूसरा अध्ययन क्रिया स्थान है। इसमें बताया है कि जहाँ इच्छा है वहीं कषाय है और कषाय ही संसार है। अतः जहाँ इच्छा का अभाव है वहाँ कषाय का भी अभाव है और कषायाभाव ही मोक्ष है। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन में यह बताया है कि साधक को सांसारिक क्रिया का त्याग करके ईर्यापथिकी क्रिया को स्वीकार करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि साधक को वीतराग भाव को प्राप्त करना चाहिए।

तीसरा आहार-परिज्ञा अध्ययन है। इसमें शुद्ध एषणीय आहार ग्रहण करने का वर्णन किया है।

चौथा प्रत्याख्यान-परिज्ञा अध्ययन है। इसमें बताया है कि जब तक व्यक्ति किसी क्रिया का त्याग नहीं करता तब तक उसे सब क्रियाएँ लगती रहती हैं। अतः उसे क्रिया से होने वाले कर्म-बन्ध एवं संसार-परिभ्रमण का ज्ञान करके सांसारिक क्रियाओं का त्याग करना चाहिए।

पाँचवाँ आचार-अनाचार श्रुत अध्ययन है। इसमें शुद्ध आचार और उसमें लगने वाले अनाचारों—दोषों का वर्णन है। साधक को अनाचारों से रहित शुद्ध-निर्दोष आचार का पालन करना चाहिए।

छठा आर्द्रकीय अध्ययन है। इसमें अन्य दार्शनिकों एवं अन्य धर्म के आचार्यों तथा साधुओं के साथ आर्द्रक कुमार की जो विचार चर्चा हुई, उसका उल्लेख है।

सातवें नालन्दीय अध्ययन में श्रावक—गृहस्थ के आचार का वर्णन है। इसमें गृहस्थ जीवन का आदर्श बताया गया है।

३ स्थानांग-सूत्र

प्रस्तुत आगम में षट् द्रव्यों—१ धर्म २ अधर्म ३ आकाश ४ काल ५ जीव और ६ पुद्गल का वर्णन है। इनमें जीव को छोड़कर शेष पाँचों द्रव्य अजीव हैं। एक से लेकर चार तक के द्रव्य अरूपी हैं। काल को छोड़कर शेष पाँचों द्रव्य अस्तिकाय—समूह रूप से हैं। काल द्रव्य समूह रूप से नहीं है। धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है लोक परिमाण है वर्ण गन्ध रस स्पर्श से रहित है, अरूपी है और जीव एवं पुद्गल की गति में सहायक द्रव्य है। अधर्मास्तिकाय का भी यही स्वरूप है इसमें केवल अन्तर इतना ही है कि यह जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक है। आकाशास्तिकाय भी एक द्रव्य है, लोक-अलोक व्यापी है वर्ण गन्ध रस और स्पर्श से रहित है अरूपी है जीव और पुद्गल आदि पदार्थों को स्थान देता है अवकाश देना आकाश का गुण है। काल द्रव्य अनन्त है लोक व्यापी है वर्ण गन्ध रस और स्पर्श से रहित है, अरूपी है और यह नए पदार्थों को पुरातन बनाता है, पुरानों को समाप्त

प्रथम-श्रुतस्कध

प्रस्तुत आगम दो श्रुत-स्कधो मे विभक्त है। प्रथम-श्रुतस्कध मे १९ अध्ययन हैं—१ उत्क्षिप्त अध्ययन—इसमे श्रेणिक राजा के पुत्र मेघकुमार की कथा है, २ सघाटक अध्ययन—इसमे धन्य सेठ और विजय चोर का दृष्टान्त दिया है, ३ अडक अध्ययन—इसमे मोर के अडो के उदाहरण के माध्यम से धर्मोपदेश दिया है, ४ कूम अ०—इसमे कच्छवे का दृष्टान्त है, ५ शैलक अ०—शैलक राजर्षि की कथा है ६ तुम्ब अ०—इसमे तुम्बे का रूपक देकर जीव की उर्ध्वगति का निरूपण किया है, ७ रोहिणी अ०—इसमे एक सेठ की पुत्रवधू रोहिणी का उदाहरण है, ८ मल्ली अ०—इसमे स्त्री-लिंग मे तीर्थंकर होने वाले १९ वें तीर्थंकर मल्लीनाथ की कथा है, ९ माकन्दी अ०—इसमे माकन्दी नामक वणिक के जिनपाल और जिनरक्षित दो पुत्रो की कथा है, १० चन्द्रमा अ०—इसमे चन्द्रमा का उदाहरण है, ११ दावद्दव अ०—समुद्र तट पर अकुरित एव पल्लवित होने वाले इस नाम के वृक्ष का दृष्टान्त है, १२ उदक—शहर के बाहर पोखर मे सडने वाले पानी को किस तरह शुद्ध किया जा सकता है, इसका उदाहरण है, १३ मडुक अ०—नन्दन-मणिकार की कथा है, १४ तेतली अ०—तेतलिसुत नामक मत्री की कथा है, १५ नन्दी फल अ०—उक्त वृक्ष एव उसके फलो का वणन है, १६ अवरकका अ०—धातकी खड मे स्थित भरत क्षेत्र की राजधानी, उसके राजा और उसके द्वारा द्रौपदी के हरण का वणन और द्रौपदी एव पाडवो की कथा है, १७ आकीण अ०—समुद्र मे रहने वाले इस नाम के अश्वो—घोडो का वर्णन है, १८ सुसमा—उक्त नाम की श्रेष्ठि-कन्या का उदाहरण है, और १९ पुडरीक अ०—पुडरीक की कथा है। इस प्रकार उक्त १९ अध्ययनो मे कथाएँ, उपकथाएँ, दृष्टान्त, उपदृष्टान्त एव उदाहरण हैं। इसमे अनेक कथाएँ घटित है और कुछ उदाहरण साधक को समझाने के लिए बनाए गए हैं।

द्वितीय श्रुतस्कध

प्रस्तुत श्रुतस्कध परिशिष्ट के रूप मे है। इसमे एक अध्ययन है और वह दस भागो मे विभक्त हैं, जिन्हे वग सज्ञा दी गई है। और विभिन्न कथाओ के द्वारा साधना के महत्व को समझाया गया है। सामावायाग सूत्र मे दिए गए परिचय के अनुसार इसमे एक-एक धमकथा मे पाँच-सौ-पाँच-सौ आख्यायिकाएँ हैं। एक-एक आख्यायिका मे इतनी ही उपाख्यायिकाएँ हैं और प्रत्येक उपाख्यायिका मे पाँच-सौ आख्यायिका-उपाख्यायिका हैं। इस तरह समस्त कथाओ, आख्यायिकाओ एव उपाख्यायिकाओ को मिलाकर इनकी साढे तीन करोड सख्या होती है। परन्तु, वतमान मे इसमे इतनी कथाएँ उपलब्ध नही हैं।

७ उपाशक-दशांग सूत्र

प्रस्तुत आगम मे श्रमण भगवान् महावीर के दस उपासको का वणन है। जो साधक हिंसा झूठ आदि दोषो का पूणतया त्याग करके और सासारिक भोगो एव कार्यों से निवृत्त होकर सयम-पथ

को मारने और भगवान् पर प्रहार करने का वर्णन है। इसमें कौशाम्बी के शतानीक राजा की बहिन जयन्ती के द्वारा किए गए प्रश्नों और भगवान् के द्वारा दिए गए उत्तर तथा भगवान् के उपदेश से प्रभावित होकर साध्वी बनने की घटना का उल्लेख भी है। इसके अतिरिक्त इसमें भगवान् महावीर के समय के काशी-कौशल मगध वैशाली आदि देशों के और नव मल्लकी और नव लिच्छवी राजाओं के नाम तथा वज्जि-विदेह पुत्र के विजय प्राप्त की उसका उल्लेख भी है। भगवती के नवम शतक में एक पूँजीपति ब्राह्मण का वर्णन है। उनके यहाँ रहने वाली दासियों के चलातीया आरबी बहली मुरंडी पारसी आदि नामों से यह ज्ञात होता है कि वे विदेशी दासियाँ थीं। उस समय भारत का विदेशों से भी सम्बन्ध था। भगवती के अध्ययन से भगवान् महावीर के जीवन काल पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

प्रस्तुत आगम में दार्शनिक तात्त्विक आध्यात्मिक भौगोलिक एवं गणित सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर प्रश्नोत्तर है। इसमें कुछ जीवन घटनाओं और कथाओं का भी उल्लेख है। अस्तु यह विविध विषयों का एक कोष है।

६ ज्ञाताधर्मकथांग-सूत्र

प्रस्तुत आगम में दृष्टान्त एवं उदाहरण देकर साधना के स्वरूप को समझाया गया है। ज्ञाता का अर्थ है—उदाहरण रूप और धर्म-कथा का अर्थ है—धर्मप्रधान कथानक। अस्तु ज्ञाता-धर्मकथा का अभिप्राय यह है कि साधक के सम्मुख धर्म-प्रधान दृष्टान्त एवं उदाहरण प्रस्तुत करके उसे साधना-पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देना।

इसमें उदाहरणों एवं रूपकों के द्वारा साधुओं के विनय ज्ञान वैराग्य का साधना के पथ से विचलित एवं तप एवं परीषहों से घबराकर संसार की ओर मुड़ने वाले मन्द बुद्धि साधकों को पुनः धर्म में स्थिर करने का और ज्ञान दर्शन एवं चारित्र से भ्रष्ट होने वाले साधक की संसार में किस प्रकार दुर्गति होती है उसे कैसा दुःख उठाना पड़ता है इसका विस्तार से वर्णन किया है।

इसमें उन महापुरुषों के जीवन पर भी प्रकाश डाला है—जिन्होंने राग-द्वेष कषाय एवं परीषहों की विशाल सेना पर विजय प्राप्त करली है, श्रमण-साधना को ही सर्व-श्रेष्ठ धन समझकर श्रद्धा-निष्ठा से ज्ञान दर्शन और चारित्र की आराधना-साधना के माध्यम से साध्य को सिद्ध कर लिया है और अनुपम भोग-विलास का त्याग करके अनन्त और अव्याबाध सुख को प्राप्त कर चुके हैं।

इसके अतिरिक्त इसमें उक्त दृष्टान्त रूपक एवं कथाओं में आने वाले नगरों गाँवों उद्यानों भवनों सर-सरिताओं राजाओं सेठों दास-दासियों माता-पिता समवसरण धर्माचार्य लोक-परलोक के ऐश्वर्य भोग-विलास भोग-सामग्री के त्याग स्वर्ग नरक और मोक्ष के सम्बन्ध में विस्तार से उल्लेख मिलता है।

अभ्यास किया, क्या साधना की, कितना घोर तप किया और किस प्रकार कर्म-बन्धनों को तोडकर मुक्ति को प्राप्त किया।

प्रस्तुत आगम मे आठ वर्ग हैं। वर्ग का अर्थ है अध्ययनो का समूह। इन आठ वर्गों मे वर्तमान कालचक्र मे होने वाले २४ तीर्थंकरो मे से २२ वें नेमिनाथ और २४ वें भगवान् महावीर के शासन मे होने वाले ९० श्रमण-श्रमणियो का वर्णन है। प्रथम वर्ग मे गौतम कुमार आदि १० श्रमणो का वर्णन है। द्वितीय वर्ग मे अक्षोभ कुमार आदि आठ श्रमणो का, तृतीय मे अणीयस कुमार, गज सुकमाल आदि के १३ अध्ययन हैं। चतुर्थ वर्ग मे जाली आदि के दस अध्ययन है, पञ्चम वर्ग मे, पद्मावती आदि दस महारानियो के दस अध्ययन हैं। उक्त पाचो वर्ग मे भगवान् नेमिनाथ के शासन मे होने वाले श्रमण-श्रमणियो का उल्लेख है। षष्ठम वर्ग मे मकाई गाथापति, अर्जुन मालाकार, अतिमुक्त कुमार आदि के १६ अध्ययन हैं, सप्तम वर्ग मे श्रेणिक राजा की नन्दा आदि तेरह महारानियो के तेरह अध्ययन हैं और अष्टम वर्ग मे श्रेणिक की काली आदि दस महारानियो के दस अध्ययन हैं।

९ अनुत्तरोपपातिक-दशांग[1]-सूत्र

प्रस्तुत आगम मे उन दिव्य साधको की ज्योतिर्मय साधना का वर्णन है, जिसके द्वारा उन्होंने अनुत्तर विमान के सुखो को प्राप्त किया है और वहाँ के सुखो का उपभोग करके मनुष्य भव मे जन्म लेकर साधना के द्वारा मुक्ति को प्राप्त करेंगे। अनुत्तर का अर्थ है—जिससे कोई प्रधान, श्रेष्ठ, या उत्तम नही है और उपपात का अर्थ है—जन्म ग्रहण करना। इसका अभिप्राय यह हुआ कि देवलोक के सर्वश्रेष्ठ या सर्वोत्तम विमानो मे जन्म लेने वाले साधक। ये अनुत्तर विमान पांच हैं—१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित और ५ सर्वार्थ सिद्ध। इन विमानो को प्राप्त करने वाले सभी देव सम्यग् दृष्टि होते हैं और मनुष्य भव को प्राप्त करके सर्व कर्म-बन्धन से मुक्त-उन्मुक्त हो जाते हैं।

[1] 'दशा' का अर्थ दस अध्ययन करने की परम्परा रही है। कुछ आगमों मे इसका अर्थ घटित भी होता है। जैसे उपासक-दशा, इसमे दस अध्ययन ही हैं। परन्तु कुछ आगम ऐसे हैं कि उनमे दस से अधिक अध्ययन होने पर भी उन के साथ 'दशा' शब्द जुडा हुआ है। जैसे प्रस्तुत आगम और अन्त-कृत्दशा इनमे दस से अधिक अध्ययन हैं। प्रस्तुत आगम के तृतीय वर्ग के १० अध्ययन हैं और अन्तकृत्दशा मे प्रथम एव अन्तिम अष्टम वर्ग के दस-दस अध्ययन हैं। इसी के आधार पर टीकाकारो ने इनके साथ सम्बन्ध 'दशा' शब्द को सार्थक माना है। परन्तु 'दशा' शब्द का दूसरा अर्थ स्थिति, प्रसग या अवस्था भी होता है अर्थात् प्रस्तुत आगम मे अनुत्तर विमान स्वर्ग को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की स्थिति या प्रसग का वर्णन है और यह अर्थ उचित भी प्रतीत होता है। क्योंकि यह अर्थ मान लें तो फिर प्रथम या अन्तिम वर्ग के अध्ययनों की सख्या को घसीट कर अर्थ को बैठाने का प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा और यह अर्थ सब जगह घटित भी हो जाएगा।

को स्वीकार करता है उसे श्रमण निर्ग्रन्थ मुनि साधु या भिक्षु कहा है। परन्तु जो साधक सांसारिक विषयों का पूर्णतः त्याग नहीं कर सकता आंशिक त्याग करता है वह श्रमणोपासक श्रावक या उपासक कहा गया है।

आगमों में श्रावक के लिए उपासक एवं श्रमणोपासक दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है। प्रस्तुत आगम में भी श्रमणोपासक शब्द का उल्लेख है। फिर प्रस्तुत आगम का नाम श्रमणोपासक दशा न रखकर उपासक दशा क्यों रखा यह एक प्रश्न है? इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट समाधान नहीं मिलता है। परन्तु आगम-साहित्य का अध्ययन करने पर इतना ही कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में श्रावक के लिए उपासक शब्द का सम्बोधन रहा हो और इसी कारण आगम का नाम भी उपासक दशा रखा गया। बौद्ध साहित्य में श्रावक के लिए उपासक शब्द मिलता है और संभव है अन्य परपराओं में भी उपासक शब्द प्रयुक्त होता रहा होगा। अस्तु उनसे भिन्नता बताने के लिए 'उपासक' शब्द के साथ 'श्रमण' शब्द जोड़ा गया हो, जिससे श्रमण भगवान् महावीर के उपासक हैं ऐसा स्पष्ट परिज्ञान हो सके।

इसमें भगवान् महावीर के दस उपासकों का दस अध्ययनों में वर्णन है—१ आनन्द, २ कामदेव ३ चुलनीपिता ४ सुरादेव ५ चुल्लशतक ६ कुण्डकोलिक ७ सद्दालपुत्र ८ महाशतक ९ नंदनी पिता १० सालिही पिता और १० लेतियी-पिता—सालिहपुत्र।

इसमें उक्त उपासकों के नगर, उद्यान चैत्य वनखण्ड राजा और माता-पिता का वर्णन है। उनके वैभव भोग-विलास के साधन दास-दासी धन-धान्य व्यापार, वेष-भूषा और रहन-सहन का भी वर्णन है। उनके नगर में भगवान् के पधारने समवसरण में जाने धर्म कथा सुनने और अपने जीवन को नया मोड़ देने का श्रावक व्रत स्वीकार करने का वर्णन है। श्रावक बनने के बाद उनके जीवन में क्या परिवर्तन आया अपनी इच्छाओं को कितना सीमित-परिमित किया और रहन-सहन एवं व्यवहार कैसा रहा इसका भी उल्लेख है। इसके पश्चात् उनके द्वारा की गई साधना श्रुत अभ्यास उपसर्ग प्रतिमा उपसर्ग संलेखना भक्त-प्रत्याख्यान या पादपोपगम अनशन व्रत का उल्लेख है और समाधि मरण के बाद वे किस देवलोक में गए और देव ऐश्वर्य का भोग करके वे मनुष्य भव में जन्म लेकर किस प्रकार मुक्ति को प्राप्त करेंगे इसका विस्तृत वर्णन है।

८ अन्तकृद्दशांग-सूत्र

प्रस्तुत आगम में उन ९ महान्-आत्माओं के जीवन का वर्णन है जिन्होंने अपने जीवन के अन्तिम समय में केवल ज्ञान को प्राप्त करके कर्मों का अन्त किया है, समस्त कर्म-बन्धन से मुक्त-उन्मुक्त हुए हैं। इसमें उन महान् आत्माओं के नगर, उद्यान चैत्य वन-खण्ड माता-पिता एवं परिजनों का वर्णन है। इसमें यह भी बताया है कि वे किस प्रकार भगवान् के समवसरण में पहुँचे और भगवान् का प्रवचन सुनकर उन्हें कैसे वैराग्य हुआ और दीक्षा ग्रहण करने के बाद उन्होंने किसके सान्निध्य में श्रुत

अभ्यास किया, क्या साधना की, कितना घोर तप किया और किस प्रकार कर्म-बन्धनो को तोडकर मुक्ति को प्राप्त किया।

प्रस्तुत आगम मे आठ वर्ग हैं। वर्ग का अर्थ है अध्ययनो का समूह। इन आठ वर्गों मे वतमान कालचक्र मे होने वाले २४ तीर्थकरो मे से २२ वें नेमिनाथ और २४ वें भगवान् महावीर के शासन मे होने वाले ९० श्रमण-श्रमणियो का वर्णन है। प्रथम वर्ग मे गौतम कुमार आदि १० श्रमणो का वर्णन है। द्वितीय वर्ग मे अक्षोभ कुमार आदि आठ श्रमणो का, तृतीय मे अणीयस कुमार, गज सुकमाल आदि के १३ अध्ययन हैं। चतुर्थ वर्ग मे जाली आदि के दस अध्ययन हैं, पञ्चम वग मे, पद्मावती आदि दस महारानियो के दस अध्ययन हैं। उक्त पाँचो वर्ग मे भगवान् नेमिनाथ के शासन मे होने वाले श्रमण-श्रमणियो का उल्लेख है। षष्ठम वर्ग मे मकाई गाथापति, अर्जुन मालाकार, अतिमुक्त कुमार आदि के १६ अध्ययन हैं, सप्तम वर्ग मे श्रेणिक राजा की नन्दा आदि तेरह महारानियो के तेरह अध्ययन हैं और अष्टम वर्ग मे श्रेणिक की काली आदि दस महारानियो के दस अध्ययन हैं।

९ अनुत्तरोपपातिक-दशांग[1]-सूत्र

प्रस्तुत आगम मे उन दिव्य साधको की ज्योतिमय साधना का वर्णन है, जिसके द्वारा उन्होंने अनुत्तर विमान के सुखो को प्राप्त किया है और वहाँ के सुखो का उपभोग करके मनुष्य भव मे जन्म लेकर साधना के द्वारा मुक्ति को प्राप्त करेंगे। अनुत्तर का अर्थ है—जिससे कोई प्रधान, श्रेष्ठ, या उत्तम नही है और उपपात का अर्थ है—जन्म ग्रहण करना। इसका अभिप्राय यह हुआ कि देवलोक के सवश्रेष्ठ या सर्वोत्तम विमानो मे जन्म लेने वाले साधक। ये अनुत्तर विमान पाँच है—१ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित और ५ सर्वार्थ सिद्ध। इन विमानो को प्राप्त करने वाले सभी देव सम्यग् दृष्टि होते हैं और मनुष्य भव को प्राप्त करके सर्व कम-वन्धन से मुक्त-उन्मुक्त हो जाते हैं।

---

[1] 'दशा' का अर्थ दस अध्ययन करने की परम्परा रही है। कुछ आगमों मे इसका अर्थ घटित भी होता है। जैसे उपासक-दशा, इसमे दस अध्ययन ही हैं। परन्तु कुछ आगम ऐसे हैं कि उनमे दस से अधिक अध्ययन होने पर भी उन के साथ 'दशा' शब्द जुडा हुआ है। जैसे प्रस्तुत आगम और अन्त-कृत्दशा इनमे दस से अधिक अध्ययन हैं। प्रस्तुत आगम के तृतीय वग के १० अध्ययन हैं और अन्तकृत्दशा में प्रथम एव अन्तिम अष्टम वर्ग के दस-दस अध्ययन हैं। इसी के आधार पर टीकाकारों ने इनके साथ सम्बन्ध 'दशा' शब्द को साथक माना है। परन्तु 'दशा' शब्द का दूसरा अर्थ स्थिति, प्रसग या अवस्था भी होता है अर्थात् प्रस्तुत आगम मे अनुत्तर विमान स्वर्ग को प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की स्थिति या प्रसग का वर्णन है और यह अथ उचित भी प्रतीत होता है। क्योंकि यह अर्थ मान लें तो फिर प्रथम या अन्तिम वर्ग के अध्ययनों की सख्या को घसीट कर अर्थ को वैठाने का प्रयत्न नहीं करना पडेगा और यह अर्थ सव जगह घटित भी हो जाएगा।

इसमें दस अध्ययन हैं। यह तीन वर्गों में विभक्त है। तीन वर्गों में ३३ विशिष्ट पुरुषों के जीवन का वर्णन है। प्रथम और द्वितीय वर्ग में क्रमश: श्रेणिक राजा के पुत्र जालिकुमार आदि के १० अध्ययन और दीर्घसेन आदि के १३ अध्ययन हैं। तृतीय वर्ग में १ धन्य-धन्ना अनगार, २ सुनक्षत्र ३ ऋषिदास ४ पेल्लक ५ रामपुत्र ६ चन्द्रकुमार, ७ पोष्टीपुत्र ८ पेढालकुमार ९ पोट्टिलकुमार और १० वेहल्लकुमार के दस अध्ययन हैं। ये सभी साधक अपने साधना काल को पूरा करके अनुत्तर विमान में गए हैं और वहाँ से च्युत होकर मनुष्य भव को प्राप्त करेंगे और पुन: साधना करके सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त बनेंगे।

इसमें तीर्थंकर भगवान् के समवसरण उनके अतिशय और परीषहों पर विजय प्राप्त करने वाले तपस्वी तेजस्वी बने हुए तपोनिष्ठ एवं ज्ञान दर्शन और चारित्र तथा अन्य अनेक गुणों से सुशोभित शिष्यों और विशिष्ट ज्ञानी श्रमणों का वर्णन है। तीर्थंकर भगवान् का शासन जीवों के लिए कैसा हितकर और सुखद है देवों का वैभव कैसा है देव किस प्रकार से तीर्थंकरों के पास आते हैं किस प्रकार से सेवा-भक्ति करते हैं तीर्थंकर देव और मनुष्यों को किस प्रकार धर्मोपदेश देते हैं उनके प्रवचन को सुनकर मनुष्य किस प्रकार विषय-कषाय एवं भोगोपभोगों का त्याग कर तप संयम एवं साधना-पथ को स्वीकार करते हैं ज्ञान दर्शन चारित्र की किस प्रकार से साधना-आराधना करके तथा ध्यान चिन्तन-मनन एवं अनशन व्रत की साधना के द्वारा किस प्रकार से समाधि मरण को प्राप्त करके अनुत्तर विमान में जन्म ग्रहण करते हैं इसका और इसके अतिरिक्त अन्य विषयों का विस्तार से वर्णन है।

प्रस्तुत आगम आकार की दृष्टि से बहुत छोटा है। इसके प्रत्येक वर्ग में पहले अध्ययन का विस्तार से वर्णन है पहली कथा पूरे रूप में दी गई है। शेष अध्ययनों की कथाओं में इतना ही कथन किया गया है कि इसे प्रथम वत् समझें।

१ प्रश्न व्याकरण-सूत्र

इस आगम का नाम प्रश्न-व्याकरण है। प्रश्न का अर्थ है—विद्या विशेष और व्याकरण का अभिप्राय है उसका प्रतिपादन विवेचन या व्याख्या। समवायांग सूत्र में दिए गए परिचय के अनुसार इसमें अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, वस्त्र और आदित्य विषयक प्रश्नों का विविध महाप्रश्न विद्या तथा प्रश्न विद्या जिस विद्या से प्रभावित होकर देव मनो-कामना पूर्ण करते हैं वह विद्या विस्मयकारी प्रश्नों का स्व-समय और पर-समय का निरूपण करने में प्रवीण प्रत्येक बुद्ध श्रमणों द्वारा अनेकान्त भाषा में दिए गए उत्तरों की या भगवान् महावीर के द्वारा जगत के जीवों के हित के लिए दिए समाधान की प्ररूपणा की गई है। यह विषय पूर्व काल में था। वर्तमान में प्रस्तुत आगम में दस द्वार हैं—

प्रश्न-व्याकरण के वर्तमान में १० अध्ययन मिलते हैं। टीकाकार किसी अन्य वाचना के अनुसार ४५ अध्ययन बताते हैं। परन्तु वर्तमान में उपलब्ध आगम में ४५ अध्ययन और उनमें दिए गए विषयों का नामोल्लेख नहीं मिलता और टीकाकार भी इस विषय में मौन है। टीकाकार ने केवल इतना ही उल्लेख किया है कि पूर्व काल में इस आगम में ये सब विद्याएं थीं, परन्तु वर्तमान काल में तो इसमें पांच आस्रव और पांच संवर का ही वर्णन है।—प्रश्न व्याकरण टीका

पहले पांच द्वारो में हिंसा, झूठ स्तेय, अब्रह्म और परिग्रह इन पांच आस्रवो का और अन्तिम पांच द्वारो मे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच संवरो का वर्णन है। इसमे लगभग ५४ प्रकार की अनार्य जाति के नामों[1] एव नव ग्रहो[2] और २८ नक्षत्रो का उल्लेख भी मिलता है, जबकि प्राचीन आगमो मे ८१ ग्रहो की मान्यता का उल्लेख मिलता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तुत आगम उत्तरकालीन रचना है। इसी कारण इसमे उत्तर-काल मे आचार्यों द्वारा मान्य ९ ग्रहो का वर्णन उपलब्ध होता है।

११ विपाक-सूत्र

प्रस्तुत आगम मे आत्मा द्वारा किए गए शुभाशुभ कर्मों के विपाक का वर्णन है। इसे कर्म विपाक दशाग भी कहते हैं। भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य, प्रथम गणधर गौतम स्वामी भिक्षा के लिए शहर मे जाते हैं और वहाँ किसी व्यक्ति को पीडित एव दु खित देखते हैं, तो उनका हृदय दया एव करुणा से भर जाता है। उसकी स्थिति को देखकर वे यह तो समझ लेते है कि यह व्यक्ति अशुभकर्म का फल भोग रहा है। परन्तु, यह नही समझ पाते कि इसने कैसा क्रूर कर्म किया था, जिसका प्रतिफल यह भोग रहा है। इसके सम्बन्ध मे वे भिक्षा से लौटकर भगवान् से प्रश्न करते हैं और इसके उत्तर मे भगवान् उन्हें उसके पूर्वभव की कथा सुनाते हैं और उनके द्वारा सेवित हिंसा, झूठ, चोरी, जारी-व्यभिचार, परिग्रह सचय के लिए लूट-खसोट, तीव्र कषाय, प्रमाद, पाप-प्रवृत्ति, अशुभ अध्यवसाय एव आर्त-रौद्र ध्यान आदि दोषो का वर्णन करते हैं और साथ मे यह भी बताते हैं कि यह नरक, तिर्यञ्च एव मनुष्य योनि मे भयकर वेदना सह आया है, यहाँ दारुण दु ख उठा रहा है और अभी इतने लम्बे समय तक यह ससार मे विभिन्न गतियो मे परिभ्रमण करेगा। परन्तु इतना सुनाने के बाद भी भगवान् उसकी विशुद्ध आत्मा को नही भूलते। वे गौतम को स्पष्ट शब्दो मे कहते हैं कि इतना लम्बा ससार परिभ्रमण करने के बाद ये आत्माएँ—जिन्हे आज लोग दुष्ट, पापी एव दुराचारी कहकर धिक्कारते हैं, मुक्ति को प्राप्त करेंगी। इस वर्णन का इतना ही अभिप्राय है कि व्यक्ति अपने क्रूर एव दुष्कर्म का फल अवश्य पाता है, परन्तु उसके दुष्ट कर्म से उसकी आत्मा दुष्ट नही बनती। अस्तु तुम दुष्टता से दूर रहो, दुष्ट व्यक्ति से नही। क्योकि दुष्टता का परित्याग करने के बाद एक दिन वह भी सिद्ध-बुद्ध बन जाएगा।

इसके पश्चात् प्रस्तुत आगम मे भगवान् सुख प्राप्त करने वाले व्यक्तियो के जीवन की तसवीर भी गौतम के सामने रखते हैं। सुबाहुकुमार आदि के पूर्व भव का वर्णन करते हुए भगवान् यह बताते हैं कि सयम-निष्ठ, तपस्वी, शीलवन्त और गुणवान साधु को मन, वचन और काय की प्रसन्नता से एव भावना से दान देने वाला व्यक्ति किस प्रकार नरक के बन्धन को तोड लेता है, ससार-सागर से पार हो जाता है, सम्यकत्व के ज्योतिमय आलोक मे अपने जीवन को आलोकित करता है और सब के हित प्रद सुखप्रद बनता है, सबको प्रिय लगता है और सुख-पूर्वक साधना करके ७-८ भव मे मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि शुभ कार्य करने वाला सुख को प्राप्त करता है और सुख-पूर्वक अपने साध्य को सिद्ध कर लेता है।

[1] प्रश्न-व्याकरण, १, ४
[2] प्रश्न-व्याकरण, ५, १८

इसमें दो श्रुत-स्कन्ध हैं—१ दुःख-विपाक और २ सुख-विपाक। पहले में दस अध्ययन हैं—१ मृगापुत्र २ उज्झित ३ अभग्न सेन ४ शकट ५ बृहस्पतिदत्त ६ नन्दिवर्धन ७ उम्बर दत्त ८ शौरिकदत्त ९ देवदत्ता और १० अञ्जूदेवी। द्वितीय में भी सुबाहुकुमार, भद्रनन्दी आदि के दस अध्ययन हैं। इसमें सुबाहुकुमार के जीवन का पूरा वर्णन है। शेष सब अध्ययनों में संक्षेप मात्र निर्देश किया है।

उपांग-साहित्य

१ औपपातिक सूत्र—इस आगम में चम्पा नगरी, पूर्णभद्र उद्यान, वन-खण्ड, अशोक वृक्ष पृथ्वी-शिला का और चम्पा के अधिपति कौणिक राजा, महारानी धारिणी और उनके राज परिवार तथा भगवान् महावीर का वर्णन है। कौणिक जिस प्रकार भगवान् को वन्दन करता था, उनकी सेवा करता था इसका भी वर्णन है। चम्पा के नागरिकों का, कौणिक की सेना का, भगवान् की उपासना करने के लिए आने वाले नगर वासियों का, भगवान् द्वारा अर्ध मागधी भाषा में दिए जाने वाले प्रवचन का और समवसरण का विस्तृत उल्लेख है। इसमें विभिन्न सम्प्रदायों के तापस, श्रमणों एवं भिक्षुओं परिव्राजकों, आजीवकों, निह्नवों और उत्तम साधना के द्वारा प्राप्त होने वाली देवगति में उत्पत्ति आदि का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त कर्म-बन्ध के कारण केवली समुद्घात और सिद्ध स्वरूप का भी वर्णन है।

२ राजप्रश्नीय-सूत्र—नन्दी सूत्र में इसे रायपसेणिय कहा है। आचार्य मलयगिरि ने रायपसेणीय नाम स्वीकार किया है। डॉ. विन्टरनिट्ज का कथन है कि इसमें पहले राजा प्रसेनजित की कथा थी। परन्तु उत्तर काल में प्रसेनजित के स्थान में पएस लगाकर प्रदेशी के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न किया गया। वर्तमान में इसमें प्रदेशी राजा के जीवन एवं केशी-श्रमण के साथ हुए संवाद का विस्तृत विवेचन मिलता है।

इसमें भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के केशी-श्रमण के साथ एक नास्तिक राजा प्रदेशी के संवाद का एवं उसके जीवन परिवर्तन का उल्लेख है। राजा के जीवन परिवर्तन के कारण अर्थात् नास्तिक से आस्तिक बनकर श्रावक धर्म का परिपालन करते हुए समाधि-पूर्वक मरण से वह सूर्याभ नाम देव बना और देव बनने के बाद वह भगवान् के समवसरण में उनका दर्शन करने आया तथा उसने भगवान् के सामने अपना नाटक प्रस्तुत किया। इसके आरम्भ में सूर्याभदेव का वर्णन है। इसके बाद केशी-श्रमण द्वारा राजा प्रदेशी के तर्कों के लिए गए उत्तर एवं प्रतिबोध का वर्णन है। डॉ. विन्टरनिट्ज का कथन है कि इस संवाद के कारण प्रस्तुत आगम एक परम एवं उदार ग्रन्थ बन गया है।

३ जीवाभिगम—प्रस्तुत आगम में जीव अजीव द्वीप समुद्र पर्वत नदी आदि का विस्तृत वर्णन है। जीवाभिगम का अर्थ है—जिस आगम में जीव और अजीव का अभिगम-ज्ञान है। प्रस्तुत आगम में नव-प्रकरण—प्रतिपत्ति है। इसमें तृतीय प्रकरण सब से विस्तृत है जिसमें देवों एवं द्वीप-

---

दीघनिकाय के पायासिसुत्त में भी प्रदेशी का प्रायः ऐसा ही वर्णन मिलता है।

सागरो का विस्तृत वर्णन है। इस प्रकरण मे रत्न, अस्त्र-शस्त्र, धातु, मद्य, पात्र, आभूषण, भवन, वस्त्र, मिष्ठान, दास, त्योहार, उत्सव, यान और रोग आदि के भेदो का उल्लेख है। जम्बू द्वीप के वर्णन प्रसग मे पद्मवरवेदिका की दहलीज, नीव, खम्भे, पटिए, सॉधे, नली, छाजन आदि का उल्लेख किया है, जो स्थापत्य-कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

४ प्रज्ञापना-सूत्र—प्रज्ञापना का अर्थ है—प्र—प्रकर्ष रूप से ज्ञापन-करना—जानना। जिस आगम के द्वारा पदार्थ के स्वरूप को प्रकर्ष—व्यवस्थित रूप से जाना-समझा जाए, उसे प्रज्ञापना कहते हैं। इसमे जीव, अजीव, आस्रव, सवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष का वर्णन है। इसके १, ३, ५, १० और १३ वें पद मे जीव-अजीव का, १६ और २२ वें मे मन, वचन और काय इन योग और आस्रव का, २३ वें पद मे बन्ध का, ३६ वें पद मे केवली समुद्घात के साथ सवर, निर्जरा और मोक्ष का वर्णन है। अन्य पदो मे लेश्या, समाधि और लोक-स्वरूप को समझाया है।

प्रस्तुत आगम के ३६ पद हैं—१ प्रज्ञापना, २ स्थान, ३ अल्पाबहुत्व, ४ स्थिति, ५ पर्याप्ति, ६ उपपातोद्वर्तन, ७ उच्छ्वास, ८ सज्ञा, ९ योनि, १० चरम, ११ भाषा, १२ शरीर, १३ परिणाम, १४ कषाय, १५ इन्द्रिय, १६ प्रयोग, १७ लेश्या, १८ कायस्थिति, १९ सम्यक्त्व, २० अन्त-क्रिया, २१ अवगाहना, २२ क्रिया, २३ कर्म-प्रकृति, २४ कर्म-बन्ध, २५ कर्म-वेद, २६ कर्म-वेद-बन्ध, २७ कर्म-प्रकृति-वेद, २८ आहार, २९ उपयोग, ३० पश्यत, ३१ सज्ञा, ३२ सयम, ३३ ज्ञान-परिणाम, ३४ प्रविचार परिणाम, ३५ वेदना, और ३६, समुद्घात।

५ जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति—इसमे जम्बू-द्वीप एव उसमे स्थित भरतक्षेत्र का विस्तृत वर्णन है। यह आगम भूगोल विषयक है। इसका अधिकाश भाग भारत के वर्णन मे चक्रवर्ती सम्राट भरत की कथाओ ने घेर रखा है। इसमे अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल मे होने वाले सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दुषमा, दुषमा-सुषमा, दुषमा, दुषमा-दुषमा इन कालो का वर्णन है। इनमे प्रथम, द्वितीय और तृतीय आरे मे होने वाले १० कल्पवृक्षो और तृतीय चतुर्थ मे होने वाले तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव एव वासुदेव आदि का वर्णन है।

६ सूर्य प्रज्ञप्ति—इसमे सूर्य आदि ज्योतिष चक्र का वर्णन है। यह खगोल शास्त्र है। इसमे २० प्राभृत है—१ मडलगति-सख्या, २ सूर्य का तिर्यक परिभ्रमण, ३ प्रकाश्य क्षेत्र परिमाण, ४ प्रकाश-सस्थान ५ लेश्या-प्रतिघात, ६ प्रकाश कथन, ७ प्रकाश-सक्षिप्त, ८ उदय-अस्त सस्थिति ९ पौरुषी छाया परिमाण, १० योग-स्वरूप, ११ सवत्सरो का आदि-अन्त, १२ सवत्सरो के भेद, १३ चन्द्र की वृद्धि-क्षय, १४ ज्योत्स्ना परिमाण, १५ शीघ्र-मन्द गति निर्णय, १६ ज्योत्स्ना लक्षण, १७ च्यवन और उपपात, १८ ज्योतिषी विमानो की ऊँचाई, १९ चन्द्र-सूर्य सख्या, २० चन्द्र-सूर्य अनुभाव।

डॉ. विन्टरनिट्ज ने सूर्य प्रज्ञप्ति को वैज्ञानिक ग्रन्थ स्वीकार किया है। अन्य पाश्चात्य विचारकों ने इसमें उल्लिखित गणित और ज्योतिष विज्ञान को महत्त्वपूर्ण माना है। डॉ. शुब्रिंग ने हेम्बर्ग यूनिवर्सिटी जर्मन के दिए गए अपने एक भाषण में उल्लेख किया है—"जैन विचारकों ने जिन तर्क सम्मत एवं सुसम्बद्ध सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है आधुनिक विज्ञान वेत्ताओं की दृष्टि में भी अमूल्य एवं महत्त्वपूर्ण है। विश्व रचना के सिद्धान्त के साथ-साथ उसमें उच्च कोटि का गणित एवं ज्योतिष विज्ञान भी मिलता है। सूर्य प्रज्ञप्ति में गणित एवं ज्योतिष पर गहराई से विचार किया गया है। अतः सूर्य प्रज्ञप्ति का उल्लेख किए बिना भारतीय ज्योतिष का इतिहास अधूरा एवं अपूर्ण रहेगा। वस्तु पाश्चात्य विचारकों एवं ऐतिहासिक विद्वानों की दृष्टि में ज्योतिष एवं गणित की दृष्टि से जानकारी एवं जिज्ञासाशील विचारकों के लिए सूर्य प्रज्ञप्ति एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस हम ज्योतिष और गणित का कोष भी कह सकते हैं।

७. चन्द्र प्रज्ञप्ति—इसमें चन्द्र ज्योतिष चक्र का वर्णन है। इसका वर्णन प्राय सूर्य-प्रज्ञप्ति जैसा है।

डॉ. विन्टरनिट्ज का कथन है कि जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति वैज्ञानिक ग्रन्थ (Scientific Works) है। इसमें भूगोल खगोल विश्व-विद्या और काल के भेदों का उल्लेख है।

८. निरयावलिका-सूत्र—निरयावलिका का अर्थ है—निरय—नरक की आवलि करने वाले व्यक्तियों का वर्णन करने वाला ग्रन्थ। इसमें मगध के सम्राट श्रेणिक के काली कुमार आदि दस पुत्रों का वर्णन है, जो अपने ज्येष्ठ भ्राता कोणिक के पक्ष में अपने नाना चेटक से युद्ध करते हुए मरकर नरक में गए और वहाँ से निकल कर मोक्ष जायेंगे।

९. कल्पावतंसिका-सूत्र—इसमें मगध देश के सम्राट् श्रेणिक के पद्मकुमार आदि दस पौत्रों का वर्णन है जो दीक्षा ग्रहण करके विभिन्न कल्पों—देवलोकों में उत्पन्न हुए और वहाँ के सुख-वैभव एवं आयु का भोग करके मनुष्य भव में आकर मोक्ष जाएँगे।

१०. पुष्पिका-सूत्र—इसमें दस देवों का वर्णन है जो अपने पुष्पक विमानों में बैठकर भगवान महावीर का दर्शन करने आते हैं और उस समय गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् उनके १ चन्द्र २ सूर्य

He who h through knowledge f the structure of the world cannot but admi the inward logic and harmony f Jain ideas. Hand in hard with the efind osmogarphical ideas goes hi h standard f astronomy and math matics A history f Indian astronomy is not conceivable without the famous 'Sury P agypati

—Dr Schubring

३ महाशुक्र, ४ बहु-पुत्तोया, ५ पूर्णभद्र, ६ मणिभद्र ७ दत्त ८ वल, ९ शिव, और १० अनादीत देवो के पूर्व भव एव उनके द्वारा की गई साधना का वर्णन सुनाते है।

११ पुष्पचूलिका-सूत्र—इसमे दस अध्ययन है और हरि देवी आदि दस-देवियाँ अपने पुष्प-चूलिका विमान मे बैठकर भगवान् का दर्शन करने आती हैं और गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् उन देवियो के पूर्व-भव एव उनके द्वारा की गई साधना का वर्णन करते है।

१२ वृष्णि-दशा-सूत्र–प्रस्तुत आगम मे १२ अध्ययन है। इसमे वृष्णिवश के वलभद्र जी के निषढ कुमार आदि १२ पुत्र भगवान् नमिनाथ के पास दीक्षित हुए और साधना करके सर्वार्थसिद्ध विमान मे गए और वहाँ सुख-वैभव एव आयु को भोग कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मोक्ष जाएँगे, इसका वर्णन है।

मूल-साहित्य

१ दशवैकालिक-सूत्र—चतुर्दश पूर्वधर आचार्य शय्यभव ने अपने पुत्र मनक की साधना को सफल ना ने के लिए दशवैकालिक-सूत्र की रचना की।[1] इसमे दस अध्ययन और दो चूलिकाएँ हैं। इसमे साध्वाचार का वर्णन है।

यह दस अध्ययनो मे विभक्त है। प्रथम द्रुम-पुष्पिक अध्ययन है। इसमे समस्त पुरुषार्थो मे धर्म को प्रधान माना है। इसकी प्रथम गाथा मे बताया है—अहिंसा, सयम और तप उत्कृष्ट मगल रूप धर्म हैं।[2] अस्तु साधक को अपनी वृत्ति मधुकर की तरह ऐसी बनानी चाहिए कि जिससे वह किसी पर भार-भूत न बने, उसके कारण किसी गृहस्थ को कष्ट न उठाना पडे और न अन्य जीवो को पीडा प्राप्त हो।

दूसरे श्रामण्य-पूर्वक अध्ययन मे राजमती और रथनेमि का सवाद दिया गया है। इससे यह बताया है कि साधक के मन मे सासारिक विषयो के प्रति राग-भाव पैदा न हो और यदि कभी मोहवश हो रहा हो, तो वह रथनेमि की तरह अपने जीवन को सभाल ले।

तृतीय क्षुल्लिकाचार-कथा मे ५२ अनाचारो का वर्णन है, जो साधु के आचरण करने योग्य नही है। चतुर्थ-षट्-जीवनिका अध्ययन मे छह काय के जीवो का, उनकी रक्षा करने और पाँच महाव्रतो एव छट्ठे रात्रि भोजन के निषेध का वर्णन है। पाँचवें पिण्डैषणा अध्ययन मे साधु को कैसा आहार, किस प्रकार से लेना, इसका वर्णन है। छट्ठे महाचार कथा मे यह बताया है कि भिक्षा आदि के लिए जाते

[1] आचार्य भद्रबाहु ने दशवैकालिक निर्युक्ति मे लिखा है कि चौथा अध्ययन, आत्म प्रवाद पूर्व से, पाचवां कर्म-प्रवाद से, सातवाँ सत्य-प्रवाद पूर्व से और शेष अध्ययन नवमे प्रत्याख्यान पूर्व की तीसरी वस्तु मे से उद्धृत किए हैं। —दशवैकालिक निर्युक्ति

[2] दिगम्बर-साहित्य के धवला, जयधवला ग्रन्थों मे भी यह गाथा परिलक्षित होती है।

प्रथम साधु को रास्ते में मिलने वाले महाजन आदि के सामने किस प्रकार बात करनी चाहिए। सातवें भाषा अध्ययन में यह बताया है कि साधु को किस प्रकार से भाषाचार का वर्णन करना चाहिए। आठवें आचार प्रणिधि अ. में विशुद्ध आचार का वर्णन है। नवमें विनय अध्ययन के चार उद्देशों में विनय एवं साधु जीवन का विस्तृत वर्णन है और दसवें भिक्षु अध्ययन में बताया है कि जो श्रमण इसमें वर्णित आचार का पालन करता है वही भिक्षु है।

यदि कभी मोह कर्म के उदय से कोई साधु साधना से पतित हो रहा हो तो उसे स्थिर करने के लिए इसमें दो चूलिकाएँ जोड़ दी गई हैं—१ रति वाक्य और २ विविक्त चर्या। प्रथम में साधु को संयम में स्थिर रखने के लिए नरक आदि का वर्णन है और दूसरी में अपने मन को शान्त करने के लिए एकान्त स्थान में साधना करने का उपदेश दिया है।

२ उत्तराध्ययन-सूत्र—जैन परंपरा की यह मान्यता रही है कि प्रस्तुत आगम में भगवान् महावीर की अन्तिम देशना का संकलन है। कुछ आचार्यों की यह मान्यता है कि भगवान् महावीर ने निर्वाण रात्रि के पहले ५५ अध्ययन पुण्य-विपाक के और ५५ पाप-विपाक के कहे[*] उसके बाद बिना पूछे उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों का वर्णन किया। इसलिए इसे अपृष्ठ व्याकरण—अपृष्ट देशना कहते हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि ३६ अध्ययन समाप्त करके भगवान् मरुदेवी माता का प्रधान नामक ३७ वें अध्ययन का वर्णन करते हुए सम्पूर्ण कर्मों का ध्वंसीकरण करके सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गए।[1] कुछ आचार्य इसे भगवान् की अन्तिम देशना नहीं मानते। प्रस्तुत आगम के वर्णन को देखते हुए ऐसा लगता है कि स्थविरों ने इसका बाद में संग्रह किया है। कुछ अध्ययन ऐसे हैं जिनमें प्रत्येक बुद्ध एवं अन्य विशिष्ट श्रमणों के द्वारा दिए गए उपदेश एवं संवाद का संग्रह है। आचार्य भद्रबाहु ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि इसके कुछ अध्ययन अंग-साहित्य में लिए हैं कुछ जिन भाषित हैं और कुछ प्रत्येक-बुद्ध श्रमणों के संवाद रूप में हैं।[2]

जो भी कुछ हो इतना तो मानना ही पड़ेगा कि प्रस्तुत आगम भाषा भाव एवं शैली की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें सरल एवं सरस शब्दों में तत्त्वाचार एवं आध्यात्मिक विषय का सुन्दर निरूपण किया है।

प्रस्तुत आगम में ३६ अध्ययन हैं—१ विनय २ परीषह, ३ चतुरंगीय ४ प्रमादाप्रमाद ५ अकाम मरण ६ क्षुल्लक-निर्ग्रन्थीय ७ औरभ्रीय ८ कापिलीय ९ नमिप्रव्रज्या १० द्रुमपत्र ११ बहुश्रुत १२ हरिकेशीय १३ चित्त-सम्भूति १४ इषुकारीय १५ सभिक्षुक १६ ब्रह्मचर्य-गुप्ति १७ पाप-श्रमण १८ संयतीय १९ मृगापुत्रीय २० महानिर्ग्रन्थीय २१ समुद्रपालीय २२ रथनेमीय २३ केशी-गौतमीय

---

* वर्तमान में दुःख विपाक और सुख विपाक में दस-दस अध्ययन हैं।

१ जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर। —आचार्य आत्माराम जी (विजयानन्द सूरि)

२ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा ४।

२४ प्रवचन-माता, २५ यज्ञीय, २६ समाचारी, २७ खलुंकीय, २८ मोक्षमार्ग, २९ सम्यक्त्व-पराक्रम, ३० तपोमार्ग, ३१ चरण-विधि, ३२ प्रमाद-स्थान, ३३ कर्म-प्रकृति, ३४ लेश्या, ३५ अनगार-मार्ग, और ३६ जीवाजीव-विभक्ति है।

३ नन्दी-सूत्र—प्रस्तुत आगम मे तीर्थंकरो, गणधरो के नाम, उनकी स्तुति, स्थविरावली, त्रिविध परिषदा, अवधि-ज्ञान, मन पर्यव-ज्ञान, केवल-ज्ञान, मति-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान और श्रुत-साहित्य का वर्णन है।

४ अनुयोग द्वार-सूत्र[1]—इसमे आवश्यक श्रुत-स्कध के निक्षेपो, उपक्रम-अधिकार, आनुपूर्वी, दस नाम, प्रमाण द्वार, निक्षेप, अनुगम और नय का वर्णन है। इसमे नव रस, काव्य-शास्त्र से सबद्ध कुछ बातो, महाभारत, रामायण, कौटिल्य-शास्त्र, घोटक-मुख आदि का उल्लेख है।

५ आवश्यक[2]—साधु के लिए जो क्रिया अवश्य करने योग्य है उसे आवश्यक कहते हैं। उसके छह अध्ययन हैं—१ सामायिक, २ चतुर्विंशति-स्तव, ३ वन्दन, ४ प्रतिक्रमण, ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान।

६ पिंड-निर्युक्ति या ओघ-निर्युक्ति

पिंड निर्युक्ति मे आहार ग्रहण करने की विधि का उल्लेख है। इसमे आहार-लेने और उद्गम उत्पादन, एषणा और ग्रासैषणा के दोषो का वर्णन किया है।

ओघ-निर्युक्ति मे सामान्य-विशेष की गहराई मे न उतर कर चरण-सतरी, करण-सतरी, प्रति-लेखन, पिंड-ग्रहण, उपधि-निरूपण, अयतना का त्याग, प्रतिषेवणा, आलोचना और विशुद्धि द्वार का वर्णन है। इसमे मुख्य रूप से चरण-करण का वर्णन है।

छेद-साहित्य

१ निशीथ—छेद-सूत्रों मे श्रमण-श्रमणी के आचार, गोचरी—भिक्षाचरी, कल्प, क्रिया आदि सामान्य नियमो का वर्णन हैं। इसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का भी वर्णन

---

[1] स्थानकवासी और तेरहपथ परम्परा उक्त चार आगमों को मूल सूत्र मानती है। मूर्ति पूजक सम्प्रदाय के कुछ आचार्य ६ मूल सूत्र मानते हैं, और कुछ चार। जो चार मानते हैं, वे दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आवश्यक और पिंडनिर्युक्ति या ओघ-निर्युक्ति को मूल-सूत्र मानते हैं। नन्दी और अनुयोग-द्वार को चूला मानते हैं और छह मानने वाले नन्दी और अनुयोगद्वार को भी उसमें समाविष्ट कर लेते हैं।

स्थानकवासी और तेरहपथी इसे मूल-सूत्र नहीं, स्वतन्त्र आगम मानते हैं।

है। सामान्य रूप से छेद-सूत्र अपवाद मार्ग के सूत्र कहलाते हैं। इसमें मुख्य रूप से साध्वाचार का वर्णन है। फिर भी उसमें कहीं-कहीं श्रावक के आचार का भी उल्लेख है। जैसे श्रावक की ११ प्रतिमा, गुरु की ३३ आशातना नहीं करना और आलोचना करना आदि श्रमण के आचार का वर्णन है।

निशीथ-सूत्र आचारांग-सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध की पाँचवीं चूला है। इसका अपरनाम—आचार-प्रकल्प नाम है। इसमें साध्वाचार में दोष लगाने वाले साधक के लिए प्रायश्चित्त की व्यवस्था की गई थी। अतः इसे आचारांग से पृथक् कर दिया और जब छेद-सूत्रों की व्याख्या की गई, तब इसे छेद-सूत्रों में इस स्थान दे दिया।

इस आगम में २ उद्देशक हैं। पहले में १ बोल हैं जिनका सेवन करने कराने और अनुमोदन करने वाले को मासिक प्रायश्चित्त आता है। दूसरे में ६ तीसरे में १ चौथे में सौ से कुछ अधिक और पाँचवें में बोल हैं जिनका सेवन करने-कराने और अनुमोदन करने वाले को लघु-मासिक प्रायश्चित्त आता है। छह से उन्नीस तक में क्रमशः ७ ९१ १७ २ ४७ ९२ १ १ ४५, १२४ १ १५१ ६४ और ३५ बोल हैं और इनका सेवन करने करवाने और अनुमोदन करने वाले को चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है। २ वें उद्देशक में मासिक लघु-मासिक और चातुर्मासिक प्रायश्चित्त की विधि का उल्लेख है। निशीथ भाष्यकार ने छेद-सूत्रों को उत्तम—श्रेष्ठ सूत्र माना है। क्योंकि इसमें आचार-शुद्धि का वर्णन है।

२ बृहत्कल्प-सूत्र—कल्प या बृहत्कल्प का कल्पाध्ययन नाम भी मिलता है। यह पर्युषण-कल्प या कल्प-सूत्र से भिन्न है। यह आगम श्रमण आचार के प्राचीनतम ग्रन्थों में से एक है। निशीथ और व्यवहार की तरह इसकी भाषा भी प्राचीन है। इसमें श्रमण—श्रमणियों के संयम में साधक—कल्पनीय और संयम में बाधक—अकल्पनीय स्थान वस्त्र पात्र आदि विस्तृत विवेचन है, इसलिए इसे कल्प कहते हैं। आचार्य मलयगिरि का कथन है कि प्रस्तुत आगम नवमें पूर्व के आचार नामक तृतीय वस्तु के १ वें प्राभृत में से लिया गया है जिसमें प्रायश्चित्त का विधान है।

इसमें छह उद्देशक हैं। इसमें मुख्य रूप से साधु-साध्वियों के आचार का वर्णन है। इसमें संयम में बाधक बनने वाले पदार्थों के लिए 'न कप्पई'—ग्रहण करना नहीं कल्पता कह कर ग्रहण का निषेध किया है और संयम में सहायक पदार्थों के लिए 'कप्पई'—कल्पता है, कहने का प्रयोग करके उनको ग्रहण करने का आदेश दिया है। इस प्रकार के प्रायश्चित्त का तथा किस प्रकार के दोष का सेवन करने वाले को कैसा प्रायश्चित्त देना इसका वर्णन है। इसमें कल्प के ६ भेदों का भी उल्लेख है।

३ व्यवहार-सूत्र—इसमें १ उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में बताया है कि आलोचना (confession) सुनने वाला और करने वाला श्रमण कैसा होना चाहिए आलोचना कैसे करनी चाहिए और

निशीथ भाष्य गाथा ६१ ४।

उसे कितना प्रायश्चित्त देना चाहिए। दूसरे उद्देशे मे अनेक साधु एक साथ विहार कर रहे है, उसमे से एक या अनेक साधु दोष का सेवन करें तो साथ के साधुओ को या अन्य साधुओ को क्या करना चाहिए, इसका वर्णन है। तीसरे मे गणि बनाने और कैसे साधु को आचार्य उपाध्याय आदि सात पदविये देने या न देने का वर्णन है। चौथे मे बताया है, कि साधु-साध्वी को कितने साधु-साध्वी के साथ विहार एव चातुर्मास करना चाहिए। पाँचवें मे साध्वियो की प्रवर्त्तिनी आदि पदवियो का वर्णन है। छट्ठे मे गोचरी, स्थडिल स्वाध्याय भूमि आदि के सम्बन्ध मे वर्णन है। सातवें मे दूसरी सम्प्रदाय से आने वाली साध्वी के साथ कैसा व्यवहार करना इसका तथा साध्वियो के अन्य नियमो का वर्णन है। आठवें मे गृहस्थ के मकान, तख्त आदि को कैसे काम मे लेना इसका उल्लेख है। नववें मे शय्यान्तर—मकान मालिक के सम्बन्ध मे वर्णन है और दसवें मे दो प्रकार की प्रतिमा, दो तरह का परीषह, पाँच व्यवहार, चार तरह के साधु, चार प्रकार के आचार्य और अमुक-अमुक आगम कितने वर्ष की दीक्षा पर्याय होने पर सीखना चाहिए आदि बातो का वर्णन है।

४ दशाश्रुतस्कध-सूत्र[1]—इसमे दस १० अध्ययन है। पहले अ० मे २० असमाधि दोष, दूसरे अ० मे २१ सबल दोष, तीसरे अ० मे ३३ आशातना, चौथे अ० मे आचार्य की आठ सपदा, पाँचवें मे चित्त समाधि के १० स्थान, छट्ठे मे श्रावक की ११ प्रतिमा, सातवें मे भिक्षु प्रतिमा, आठवें मे भगवान महावीर के च्यवन, जन्म, सहरण, दीक्षा, केवल ज्ञान और मोक्ष जाने का समय, नववें मे मोहनीय कर्म बन्ध के ३० स्थान और दसवें मे नव निदानो का वर्णन है।

प्रस्तुत आगम के दशा, आयारदशा और दसासुय नामो का भी उल्लेख मिलता है। इसके आठवें अध्ययन मे भगवान महावीर के च्यवन, जन्म, सहरण, दीक्षा, केवल ज्ञान और मोक्ष का तथा २४ तीर्थंकरो का काव्यमय भाषा मे वर्णन है। इसका पज्जोसणा कप्प अथवा कल्पसूत्र नाम है। इस नाम से यह अध्ययन स्वतत्र आगम रूप से भी उपलब्ध है।

५ पचकल्प-सूत्र—प्रस्तुत आगम वर्तमान मे उपलब्ध नही है। पच कल्प-सूत्र और पच कल्प-महाभाष्य दोनो दो भिन्न ग्रन्थ नहीं, एक ही हैं। ऐसा विद्वानो का अभिमत है। जैसे पिंड निर्युक्ति और ओघ-निर्युक्ति स्वतत्र ग्रन्थ न होकर क्रमश दशवैकालिक निर्युक्ति और आवश्यक निर्युक्ति से लिया गया अश है, उसी प्रकार पचकल्प या पचकल्पभाष्य बृहत्कल्प-भाष्य का अश है। आचार्य मलयगिरि और क्षेमकीर्ति ने भी इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। इस भाष्य के कर्ता सघादास गणि क्षमाश्रमण हैं।[2]

---

[1] बृहत्कल्प भाष्य (स० मुनि पुण्य विजय जी) भाग ६, प्रस्तावना पृ० ५६।

[2] स्थानक वासी और तेरह पथी निशीथ से लेकर दशाश्रुतस्कध तक के चार सूत्रों को छेद सूत्र मानते हैं। शेष दो सूत्रों को मिलाकर मूर्ति पूजक सम्प्रदाय छेद सूत्रों की सख्या छह मानती है।

६ महानिशीथ-सूत्र—इसमें आलोचना और प्रायश्चित्त का वर्णन है। महाव्रत का और विशेष करके चतुर्थ महाव्रत का उल्लघन करने वाले साधक को कितना दुख सहन करना पड़ता है, इसका वर्णन करके कर्म सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इसमे आचार-निष्ठ, आचार-हीन साधुओं का वर्णन है और कमलप्रभ आदि आचार्यों की कथाएँ भी हैं। भाषा और विषय की दृष्टि से इसकी प्राचीन आगमो में गणना नहीं की जा सकती। इसमें तान्त्रिक विषय एवं जैनागमों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है।

प्रकीर्णक

१ चतुःशरण—इसमे यह बताया है कि चार व्यक्तियों—१ अरिहन्त २ सिद्ध ३ साधु, और ४ धर्म का शरण लेने से दुष्कृत का नाश और सुकृत का उदय होता है। ये चारो परम पुरुष शुभ कार्य के कारण हैं। इसमे उक्त चारों के स्वरूप का भी वर्णन है। इसमें कुल ६३ गाथाएँ हैं। उक्त शास्त्र का दूसरा नाम कुशलानुबन्ध भी है।

२ आतुर-प्रत्याख्यान—इसमे यह समझाया गया है कि बालमरण, बाल-पंडित मरण और पंडित-मरण किस व्यक्ति का होता है। इसमे इसका विस्तार से वर्णन है कि पंडित रोग-शय्या मे या मृत्यु का समय निकट जानकर किस प्रकार सब से क्षमत-क्षमापना त्याग-प्रत्याख्यान संलेखना एवं अनशन व्रत स्वीकार करता है।

३ भक्त-परिज्ञा—इसमे मृत्यु के समय किए जाने वाले भक्त-परिज्ञा इंगित-मरण और पादपोपगमन तीन प्रकार के अनशन व्रत एवं उनके भेदोपभेदों का विस्तार से वर्णन है।

४. संस्तारक—इसमे संस्तारक—मृत्यु के समय अनशन व्रत स्वीकार करते समय घास की शय्या बिछाने का वर्णन है और इसके लिए अनेक दृष्टान्त भी दिए हैं। इसमें कुल १२१ गाथाएँ हैं।

५. तन्दुल वैचारिक—इसमे सौ वर्ष की आयु वाला व्यक्ति प्रतिदिन कितना तन्दुल—चावल खाता है, उसका इसमे विचार किया गया है। इसमे मनुष्य की आहार विधि, गर्भ अवस्था, शरीर के उत्पादक कारण, संहनन संस्थान तन्दुल गणना आदि का वर्णन है। इसमें अधिकांश वर्णन गर्भ के सम्बन्ध मे है। इसमे कुल १३९ गाथाएँ और थोड़ा-सा गद्य भाग है।

६ चन्द्र वेध्यक—इसमे राधा-वेध्य का वर्णन है। इसका उदाहरण देकर साधक को यह उपदेश दिया गया है कि उसे आत्मा मे एकाग्र ध्यान करना चाहिए, जिससे उसे मोक्ष प्राप्त होगा।

इस ग्रन्थ को मूर्तिपूजक समाज आगम रूप से स्वीकार करती है। और स्थानक वासी एवं तेरह पंथ इन्हें आगम-साहित्य मे समाविष्ट नहीं करते।

७ देवेन्द्र स्तोत्र—इसमें देवेन्द्र द्वारा भगवान् महावीर की की गई स्तुति का वर्णन है। इसमें ३२ देवेन्द्रो और उनके अधीन रहने वाले सूर्य-चन्द्र आदि देवो, उनके निवास स्थानो, उनकी स्थिति, उनके भवन और उनके परिग्रह आदि का वर्णन है।

८ गणिविद्या—इसमें ज्योतिष विद्या का वणन है। इसमें बलाबल विधि, दिवस, तिथि, नक्षत्र, करण, ग्रह-दिवस, मुहूत, शकुन, लग्न और निमित्त आदि का वर्णन है। इसमें कुल ८२ गाथाएँ हैं।

९ महाप्रत्याख्यान—प्रस्तुत आगम मे महाप्रत्याख्यान कराने की विधि का वर्णन है। इसमे यह बताया है कि जीवन मे पाप दोष के लगे हुए शूलो की आत्म आलोचना के द्वारा जीवन से निकाल कर साधक को शल्य-रहित बनना चाहिए। इसमे ससार के दु खद स्वरूप का वर्णन है। इसमे कुल १४२ गाथाएँ ह।

१० गच्छाचार—इसमे गच्छ के स्वरूप का वणन है। आचार-निष्ठ आचार्य एव उसके चरित्र निष्ठ शिष्यो से गच्छ उज्ज्वल बनता है। इसलिए इसमे आचार्य के शिष्य और गच्छ के लक्षणो का उल्लेख है। इसमें कुल १३७ गाथाएँ हैं। ४० गाथाओ में आचार्य के स्वरूप का वर्णन है, ४१ से १०६ तक साधु के स्वरूप का और १०७ से १३४ तक गच्छ के स्वरूप का वर्णन है। अन्तिम तीन गाथाओ में यह बताया गया है, कि यह प्रकीर्णक महानिशीथ, बृहत्कल्प और व्यवहार—इन तीन छेद सूत्रों में से लिया गया है।

उपसहार

आगम-साहित्य बहुत विशाल है। उसमे प्रसगानुसार विविध विषयो की चर्चा है। उसमे केवल धर्म, दर्शन एव आचार से सम्बन्धित बातो की नही, प्रत्युत सास्कृतिक, ऐतिहासिक एव वास्तु-कला आदि विषयो का भी उल्लेख मिलता है। कोई भी आगम ऐसा नही है, जिसमे केवल एक ही विषय हो। प्रत्येक आगम मे अनेक विषयो का उल्लेख मिलता है। फिर भी कुछ आगम ऐसे हैं, जिनमे एक विषय की प्रधानता है। उसमे प्रसगानुसार अन्य विषय भी आए हैं, परन्तु वे गौण रूप से आए हैं, और उनका उस विषय को पुष्ट करने के लिए प्रयोग किया गया है। अत विषय की प्रधानता की दृष्टि से हम यहाँ आगमो का वर्गीकरण कर रहे हैं।

कुछ आगम आचार से सम्बन्ध रखते है। आचाराग और दशवैकालिक आचार सूत्र हैं। अन्य आगमो मे भी साध्वाचार का वर्णन आता है। उत्तराध्ययन मे भी साध्वाचार का वर्णन है। परन्तु उक्त उभय आगमो मे साध्वाचार का वर्णन ही मुख्य है। इसकें अतिरिक्त छेद सूत्रो का मुख्य विषय भी आचार का निरूपण करना है। आचाराग और दशवैकालिक मे साधुओ के आचार का निरूपण है। उसमे प्राय उत्सर्ग मार्ग का ही विधान मिलता है। कही-कही प्रसगानुसार आपवादिक सूत्र आ गए हैं। परन्तु छेद

सूत्रों का निर्माण उत्सर्ग और अपवाद दोनों मार्गों का निरूपण करने के लिए किया गया। इनमें औत्सर्गिक एवं आपवादिक नियमों का तथा प्रमादवश अथवा मोह कर्म के उदय से आचार में दोष लगने पर उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान है।

कुछ आगम ऐसे हैं जिनमें श्रमणों एवं श्रमणोपासकों के जीवन वृत्त दिए हुए हैं। उपासक दशांग अनुत्तरौपपातिक दशांग और अन्तकृद्दशांग सूत्र श्रमण-संस्कृति की दिव्य विभूतियों के ज्योतिर्मय जीवन की आभा से आलोकित हैं। ज्ञाता-धर्मकथा में कुछ कथित घटनाओं के माध्यम से आत्म-साधना का उपदेश दिया गया है। विपाक सूत्र में पाप और पुण्य के कथानकों के द्वारा शुभाशुभ कर्मों के फल का निरूपण किया है। उक्त आगमों में प्रसंगानुसार वास्तुकला एवं ऐतिहासिक विषयों का वर्णन भी मिलता है। और अनेक स्थलों पर उस युग के सांस्कृतिक जीवन की झांकी भी देखने को मिलती है।

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति चन्द्र प्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति—तत्कालीन भूगोल-खगोल से सम्बद्ध हैं। उत्तराध्ययन और प्रकीर्णक आदि आगम उपदेश प्रधान हैं।

सूत्रकृतांग स्थानांग प्रज्ञापना समवायांग राजप्रश्नीय जीवाभिगम भगवती नन्दी और अनुयोगद्वार आदि आगम दार्शनिक विषयों से सम्बन्धित हैं।

सूत्रकृतांग में भगवान् महावीर के समय में प्रचलित मत-मतान्तरों के सिद्धान्तों का निराकरण करके स्वमत की प्ररूपणा की गई है। इसमें भूतवादियों के मत का खण्डन करके पञ्चभूतों से अलग आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार किया है। ब्रह्मवाद की एक आत्मा की मान्यता के स्थान में अनेक आत्माओं के अस्तित्व को माना है। संसार की उत्पत्ति के विषय में ईश्वर-कर्तृत्व का निराकरण करके उसे अनादि-अनन्त माना है।

स्थानांग-समवायांग के पदार्थों की गणना की शैली में आत्मा पुद्गल ज्ञान कर्म नय-प्रमाण आदि विषयों का उल्लेख किया है। प्रज्ञापना में जीव के विभिन्न भावों का विस्तार से वर्णन है। जीवाभिगम में जीव-अजीव से सम्बन्धित विषय का विस्तृत विवेचन किया गया है। राज प्रश्नीय में भगवान पार्श्वनाथ की परंपरा के केशीश्रमण के द्वारा विविध तर्कों से समझाकर श्रावस्ती के नास्तिक राजा प्रदेशी को आस्तिक बनाने का उल्लेख है। इसमें आत्मा भौतिक तत्त्वों से सर्वथा भिन्न है यह स्पष्ट किया है।

भगवती सूत्र प्रश्नोत्तर की शैली में है। इसके अनेक प्रश्नों में नय प्रमाण जीव अजीव लोक, आदि अनेक दार्शनिक प्रश्न बिखरे पड़े हैं। इनके अतिरिक्त इसमें सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक वर्णन भी उपलब्ध होता है।

अनुयोगद्वार सूत्र में मुख्य रूप से आगम का व्याख्या करने की प्रक्रिया का उल्लेख है। परन्तु प्रसंगानुसार नय प्रमाण एवं तत्त्वों का भी सुन्दर ढंग से निरूपण किया गया है।

★

व्याख्या-साहित्य · एक परिशीलन

विजय मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

भारत की सास्कृतिक त्रिपथगा वैदिक, जैन और बौद्ध

वद, जिन और बुद्ध—भारत की परम्परा तथा भारत की सस्कृति के मूल-स्रोत हैं। हिन्दू धर्म के विश्वास के अनुसार वेद "ईश्वर की वाणी" है। वेदो का उपदेष्टा, कोई व्यक्ति विशेष नही था, स्वय ईश्वर ने उनका उपदेशन किया था। अथवा वेद ऋषियो की वाणी हैं, ऋषियो के उपदेशो का सग्रह है। मूल मे वेद तीन थे। अत वेदत्रयी उसको कहा गया। आगे चल कर अथववेद को मिला कर चार वेद हो गए। अथव भी स्वतन्त्र वेद है। वेद की विशेष व्याख्या, ब्राह्मण ग्रन्थ और आरण्यक ग्रन्थ हैं। यहाँ तक कर्म-काण्ड मुख्य है। उपनिषदो मे ज्ञान-काण्ड की ही प्रधानता है। उपनिषद् वेदो का अन्तिम भाग होने से वेदान्त कहा जाता है। वेदो को प्रमाण मान कर स्मृति-शास्त्र तथा सूत्र-साहित्य की रचना की गई। मूल मे इनके वेद होने से ही ये प्रमाणित हैं। वैदिक परम्परा का जितना भी साहित्य विस्तार है, वह सव वेद मूलक है। वेद और उसका परिवार, सस्कृत भाषा मे है। अत वैदिक सस्कृति के विचारो की अभिव्यक्ति सस्कृत भाषा के माध्यम से ही हुई।

बुद्ध की वाणी त्रिपिटक

बुद्ध ने अपने जीवन-काल मे अपने भक्तो को जो उपदेश दिया था—त्रिपिटक उसी का सकलन है। बुद्ध की वाणी को त्रिपिटक कहा जाता है। बौद्ध परम्परा के समग्र विचार और समस्त विश्वासो का मूल त्रिपिटक है। पिटक तीन हैं—सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक। पिटक मे बुद्ध के उपदेश हैं।

विनय पिटक में आचार है और अभिधम्म पिटक में तत्त्व-विवेचन है। बौद्ध परम्परा का साहित्य भी विशाल है परन्तु पिटकों में बौद्ध संस्कृति के विचारों का सार संग्रह आ जाता है। अतः बौद्ध विचारों का एवं विश्वासों का मूल केन्द्र—त्रिपिटक है। बुद्ध ने अपना उपदेश भगवान महावीर की तरह उस युग की जन भाषा में दिया था। बुद्धिवादी वर्ग की उस युग में यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी। बुद्ध ने जिस भाषा में उपदेश दिया उसको पाली कहते हैं। अतः त्रिपिटकों की भाषा पालि भाषा है।

महावीर की वाणी आगम

जिन की वाणी में जिन के उपदेश में जिसको विश्वास है वह जैन है। राग और द्वेष के विजेता को जिन कहते हैं। भगवान् महावीर ने राग और द्वेष पर विजय प्राप्त की थी अतः वे जिन थे तीर्थङ्कर भी थे। तीर्थङ्कर की वाणी को जैन परम्परा में आगम कहते हैं। भगवान् महावीर के समग्र विचार और समस्त विश्वास तथा सम्पूर्ण आचारों का संग्रह जिसमें हो उसको द्वादशांग वाणी कहते हैं। भगवान् ने अपना उपदेश उस युग की जन-भाषा में जन-बोली में दिया था। जिस भाषा में महावीर ने अपने विश्वास अपने विचार और अपने आचार पर प्रकाश डाला उस भाषा को हम अर्ध-मागधी कहते हैं। अर्ध-मागधी को देव-वाणी भी कहते हैं। जैन-संस्कृति तथा जैन-परम्परा के मूल विचारों का और आचारों का मूल स्रोत आगम-वाङ्मय है। जैन परम्परा का साहित्य बहुत विशाल है। प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश गुजराती हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी विराट् साहित्य लिखा गया है। परन्तु यहाँ प्रस्तुत में अन्य साहित्य चर्चा न करके केवल आगम-साहित्य की ही विचारणा की जाएगी।

आगम-युग

वर्तमान युग के महामनीषी पण्डित सुखलालजी ने सम्पूर्ण जैन-साहित्य को पाँच कालों में किंवा पाँच युगों में विभाजित किया है। जैसे कि—आगम युग अनेकान्त स्थापन युग प्रमाणशास्त्र व्यवस्था युग नव्य न्याय युग एवं आधुनिक युग-सम्पादन एवं अनुसन्धान युग। उक्त विभाजन इतनी दीर्घ दृष्टि से किया है कि जैन वाङ्मय का सम्पूर्ण रूप इसमें गर्भित हो जाता है। पण्डित महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य पण्डित दलसुख मालवणिया जी और प्रोफेसर मोहनलाल मेहता ने भी अपने ग्रन्थों में इस विभाजन को अपनाया है। अन्य विषयों की विचारणा प्रस्तुत न होने से और आगम की विचारणा प्रस्तुत होने से हम यहाँ पर मूल आगम और उसके परिवार के सम्बन्ध में संक्षेप में विचार करेंगे।

आगम युग का काल-मान भगवान् महावीर के निर्वाण अर्थात् विक्रम पूर्व ४   से आरम्भ होकर प्रायः एक हजार वर्ष तक जाता है। वैसे किसी न किसी रूप में आगम युग की परम्परा वर्तमान युग में भी चली आ रही है।

आगम प्रणेता कौन ?

जैन परम्परा के अनुसार आगमों के प्रणेता अर्थ रूप में तीर्थंकर और शब्द रूप में गणधर कहे जाते हैं। भगवान् महावीर की वाणी का सार, गणधरों ने ग्रन्थ-बद्ध किया। स्वयं भगवान् ने सूत्र की

नहीं लिखा। अत अर्थ, भगवान् का और सूत्र, गणधर का। उक्त कथन का फलितार्थ यह हुआ, कि अर्थागम के प्रणेता तीर्थङ्कर होते हैं, और शब्दागम के प्रणेता गणधर। परन्तु आगमो का प्रामाण्य, गणधर कृत होने से नहीं है, अपितु तीर्थङ्कर की वाणी होने से है। गणधरों के सिवा स्थविर भी आगम रचना करते हैं। गणधर कृत आगमो मे और स्थविर कृत आगमो मे, एक बहुत बडा अन्तर यह रह जाता है, कि गणधर कृत आगम अङ्ग प्रविष्ट कहे जाते हैं, और स्थविर कृत अनग प्रविष्ट अर्थात् अङ्ग बाह्य कहे जाते हैं। तीर्थङ्कर के मुख्य शिष्य गणधर होते हैं, और अन्य श्रमण जो या तो चतुर्दश पूर्वी हैं, अथवा दश-पूर्वधर हैं—स्थविर होते है। परन्तु गणधर कृत और स्थविर कृत आगमो का आधार तीर्थङ्कर वाणी ही होती है, इसी आधार पर उनकी रचना प्रमाण भूत होती है। गणधर कृत आगम तो प्रमाणित होते ही हैं, परन्तु स्थविर कृत आगम भी इस आधार पर मान लिए गए हैं, कि चतुर्दश पूर्वी और दश-पूर्वधर नियमत सम्यग्दृष्टि होते हैं। अत उनके ग्रन्थ भी मूल आगमो के अविरुद्ध ही होते हैं। उक्त तर्क पर ही गणधर कृत और स्थविर कृत आगमो का प्रामाण्य, जैन परम्परा को स्वीकृत है। इस दृष्टिकोण से आगम प्रणेता तीन हैं—तीर्थङ्कर, गणधर एव स्थविर अर्थात् चतुर्दश पूर्वी और दश-पूर्वधर। शेष आचार्यों की कृतियों के सम्बन्ध मे यह विचार है कि जो बात वीतराग वाणी के अनुकूल है, वह प्रमाणित और शेष सब अप्रमाणित है

वाचना-त्रयी

पहली वाचना—वर्तमान मे उपलब्ध आगम वाङ्मय, अपने प्रस्तुत रूप मे देवर्धि गणि क्षमाश्रमण के युग मे लिखित हुए है। महावीर निर्वाण के बाद मे, एक लम्बे दुर्भिक्ष के कारण समग्र श्रमण-सघ इधर-उधर बिखर गया था। स्थिति सुधरने पर पाटलीपुत्र मे, आचार्य भद्रबाहु की अध्यक्षता मे श्रमण-सघ एकत्रित हुआ और समस्त श्रमणो ने मिल कर एकादश अङ्गो को व्यवस्थित किया। परन्तु बारहवाँ अङ्ग दृष्टिवाद का विलोप अथवा विस्मरण हो चुका था।

दूसरी वाचना—मथुरा मे, आर्य स्कन्दिल की अध्यक्षता मे की गई। जो श्रमण वहाँ एकत्रित हुए थे, उन्होने एक-दूसरे से पूछ कर, जो स्मृति मे रह सका, उसके आधार पर श्रुत को सकलित करके व्यवस्थित किया गया। जैन अनुश्रुति के अनुसार लगभग इसी समय वल्लभी मे भी नागार्जुन सूरि ने श्रमण-सघ को एकत्रित करके श्रुत-साहित्य को व्यवस्थित करने का सत्प्रयत्न किया था।

तीसरी वाचना—वल्लभीनगर मे देवर्धि गणि क्षमा-श्रमण की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुई। काल-दोष से और परिस्थिति-वश, विस्मृत श्रुत-साहित्य को फिर से सगृहीत एव सकलित करने का श्रमणो ने प्रयत्न किया। वर्तमान मे, आगमो का जो प्रारूप है, वह इसी तीसरी वाचना का अमृत-फल है। देवर्धि-गणि ने उक्त सकलित श्रुत साहित्य को लिपिबद्ध भी करा लिया था। अत उनका प्रयत्न, पूर्व प्रयत्नो की अपेक्षा अधिक स्थायी रह सका, और आज भी वह उपलब्ध हो रहा है—वर्तमान प्रस्तुत आगमो के रूप मे।

विनय पिटक में आचार है और अभिधम्म पिटक में तत्त्व-विवेचन है। बौद्ध परम्परा का साहित्य भी विशाल है परन्तु पिटकों में बौद्ध संस्कृति के विचारों का सारा सार आ जाता है। अतः बौद्ध विचारों का एवं विश्वासों का मूल स्रोत—त्रिपिटक है। बुद्ध ने अपना उपदेश भगवान महावीर की तरह जन युग की जन भाषा में दिया था। बुद्धिवादी धर्म की उस युग में यह एक बहुत बड़ी क्रान्ति थी। बुद्ध ने जिस भाषा में उपदेश दिया उसको पाली कहते हैं। अतः त्रिपिटकों की भाषा पालि भाषा है।

महावीर की वाणी आगम

जिन की वाणी में जिन के उपदेश में जिसको विश्वास है वह जैन है। राग और द्वेष के विजेता को जिन कहते हैं। भगवान् महावीर ने राग और द्वेष पर विजय प्राप्त की थी अतः वे जिन थे तीर्थङ्कर भी थे। तीर्थङ्कर की वाणी को जैन परम्परा में आगम कहते हैं। भगवान् महावीर के समग्र विचार और समस्त विश्वास तथा सम्पूर्ण आचारों का संग्रह जिसमें हो उसको 'जिनवाणी' कहते हैं। भगवान् ने अपना उपदेश उस युग की जन-भाषा में जन-बोली में दिया था। जिस भाषा में महावीर ने अपने विश्वास अपने विचार और अपने आचार पर प्रकाश डाला उस भाषा को हम अर्ध-मागधी कहते हैं। अर्ध-मागधी को देव-वाणी भी कहते हैं। जैन-संस्कृति तथा जैन-परम्परा के मूल विचारों का और आचारों का मूल-स्रोत आगम-वाङ्‌मय है। जैन परम्परा का साहित्य बहुत विशाल है। प्राकृत संस्कृत अपभ्रंश गुजराती हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी विराट् साहित्य लिखा गया है। परन्तु यहाँ प्रस्तुत में अन्य साहित्य चर्चा न करके केवल आगम-साहित्य की ही विचारणा की जाएगी।

आगम-युग

वर्तमान युग के महामनीषी पण्डित सुखलालजी ने सम्पूर्ण जैन-साहित्य को पाँच कालों में किंवा पाँच युगों में विभाजित किया है। जैसे कि—आगम युग अनेकान्त स्थापन युग प्रमाणशास्त्र व्यवस्था युग नव्य न्याय युग एवं आधुनिक युग—सम्पादन एवं अनुसन्धान युग। उक्त विभाजन इतनी दीर्घ दृष्टि से किया है कि जैन वाङ्‌मय का सम्पूर्ण रूप इसमें गर्भित हो जाता है। पण्डित महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य पण्डित दलसुख मालवणिया जी और प्रोफेसर मोहनलाल मेहता ने भी अपने ग्रन्थों में इस विभाजन को अपनाया है। अन्य विषयों की विचारणा प्रस्तुत न होने से और आगम की विचारणा प्रस्तुत होने से हम यहाँ पर मूल आगम और उसके परिवार के सम्बन्ध में संक्षेप में विचार करेंगे।

आगम युग का काल-मान भगवान् महावीर के निर्वाण अर्थात् विक्रम पूर्व ४० से आरम्भ होकर प्रायः एक हजार वर्ष तक जाता है। वैसे किसी न किसी रूप में आगम युग की परम्परा वर्तमान युग में भी चली आ रही है।

आगम प्रणेता कौन ?

जैन परम्परा के अनुसार आगमों के प्रणेता अर्थ रूप में तीर्थंकर और शब्द रूप में गणधर कहे जाते हैं। भगवान् महावीर की वाणी का सार, गणधरों ने शब्द-बद्ध किया। स्वयं भगवान् ने कुछ भी

है। इनके अतिरिक्त निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका—इन सबको भी प्रमाण मानती है, और आगम के समान ही इनमें भी श्रद्धा रखती है।

श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा और श्वेताम्बर तेरापन्थी परम्परा केवल ११ अङ्ग, १२ उपाग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक—इस प्रकार ३२ आगमो को प्रमाण-भूत स्वीकार करती हैं, शेष आगमो का नही। इनके अतिरिक्त निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीकाओ को भी सर्वाशत प्रमाण-भूत स्वीकार नहीं करती।

दिगम्बर परम्परा उक्त समस्त आगमो को अमान्य घोषित करती है। उसकी मान्यता के अनुसार सभी आगम लुप्त हो चुके हैं। अत वह ४५ या ३२ तथा निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका—किसी को भी प्रमाण नही मानती।

दिगम्बर आगम

दिगम्बर परम्परा का विश्वास है, कि वीर निर्वाण के बाद श्रुत का क्रमश ह्रास होता गया। यहा तक ह्रास हुआ कि वीर निर्वाण के ६८३ वर्ष के बाद कोई भी अगधर अथवा पूर्वधर नही रहा। अग और पूर्व के अशधर कुछ आचार्य अवश्य हुए हैं। अश और पूर्व के अग ज्ञाता आचार्यों की परम्परा मे होने वाले पुष्पदन्त और भूतिवलि आचार्यो ने षट् खण्डागम की रचना द्वितीय अग्राह्यणीय पूर्व के अश के आधार पर की और आचार्य गुणधर ने पाचवें पूर्व ज्ञान-प्रवाद के अश के आधार पर कषाय पाहुड की रचना की। भूतवलि आचार्य ने महावन्ध की रचना की। उक्त आगमो का विषय मुख्य रूप मे जीव और कर्म है। बाद मे उक्त ग्रन्थो पर आचार्य वीर सेन ने धवला और जय धवला टीकाएँ की। ये टीकाएँ भी उक्त परम्परा को मान्य हैं। दिगम्बर परम्परा का सम्पूर्ण साहित्य आचार्य द्वारा रचित है।

आचार्य कुन्द-कुन्द के प्रणीत ग्रन्थ—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि भी आगमवत् मान्य हैं—दिगम्बर परम्परा मे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के ग्रन्थ—गोमटसार, लब्धि-सार और द्रव्य-सग्रह आदि भी उतने ही प्रमाण-भूत तथा मान्य हैं। आचार्य कुन्द-कुन्द के ग्रन्थो पर आचार्य अमृतचन्द्र ने अत्यन्त प्रौढ एव गम्भीर टीकाएँ की है। इस प्रकार दिगम्बर साहित्य भले ही बहुत प्राचीन न हो, फिर भी वह परिमाण मे विशाल है, और उर्वर एव सुन्दर है।

आगम-साहित्य की परिचय-रेखा

आगम-साहित्य विपुल, विशाल और विराट् है, उसका पूर्ण परिचय एक लेख मे नही दिया जा सकता। प्रस्तुत लेख मे, आगम और उसके परिवार की केवल परिचय रेखा ही दी गई है। यदि आगम के एक-एक अग का पूर्ण परिचय दिया जाए, तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की ही रचना हो जाए। आवश्यकता तो इस बात की है, कि आगम, निर्युक्ति भाष्य, चूर्णि, टीका, टब्बा और अनुवाद—सभी पर एक-एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की जाए, जिससे आगम साहित्य का सर्वाङ्गीण परिचय जन-चेतना के सम्मुख प्रस्तुत किया जा

वर्तमान काल में

धर्म दर्शन संस्कृति और आगमों की दशा देख कर, यह विचार पैदा होता है, कि क्या आज के सभी श्वेताम्बर सम्प्रदाय-मूर्तिपूजक स्थानकवासी और तेरापन्थी—मिलकर, उपलब्ध आगमों का सुन्दर सम्पादन करने के लिए एकत्रित होकर विचार नहीं कर सकते ?

आगमों की भाषा

आगमों की भाषा अर्ध-मागधी है। जैन अनुश्रुति के अनुसार तीर्थङ्कर अर्ध-मागधी में उपदेश करते हैं। इसको देव-वाणी कहा गया है। अर्ध-मागधी को बोलने वाला आर्य कहा जाता है। यह भाषा मगध के एक भाग में बोली जाती है, इसलिए इसको अर्ध-मागधी कहते हैं। इसमें अठारह देशी भाषाओं के लक्षण मिश्रित हैं। भगवान् महावीर के शिष्य—मगध मिथिला काशी कौशल आदि अनेक देशों के थे। आगमों की भाषा में देश्य शब्दों की प्रचुरता है। जिनदासमहत्तर की व्याख्या के अनुसार मागधी और देश्य शब्दों का मिश्रण अर्ध-मागधी है। कुछ विद्वान इसको प्राकृत भाषा भी कहते हैं।

विषय-प्रतिपादन

आगमों में धर्म दर्शन संस्कृति तत्त्व गणित ज्योतिष खगोल भूगोल इतिहास—सभी प्रकार के विषय यथाप्रसङ्ग आ जाते हैं। दश वैकालिक और आचाराङ्ग में मुख्य रूप से साधु के आचार का वर्णन है, सूत्रकृताङ्ग में दार्शनिक विचारों का गहरा मन्थन है। स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग में आत्मा कर्म इन्द्रिय शरीर, भूगोल खगोल प्रमाण नय और निक्षेप आदि का वर्णन है। भगवती में गौतम गणधर और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तर हैं। ज्ञाता में विविध विषयों पर कथाएं और दृष्टान्त हैं। उपासक दशा में दश श्रावकों के जीवन का सुन्दर वर्णन है। अन्तकृद् और अनुत्तरोपपातिक में साधकों के त्याग एवं तप का बड़ा सजीव चित्रण है। प्रश्न व्याकरण में पांच आस्रव और पांच संवर का सुन्दर वर्णन किया है। विपाक में कथाओं द्वारा पुण्य और पाप का फल बताया गया है। उत्तराध्ययन में अध्यात्म उपदेश दिया गया है। नन्दी में पांच ज्ञान का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। अनुयोगद्वार में नय एवं प्रमाण का कथन है। छेद सूत्रों में उत्सर्ग-अपवाद का वर्णन है। राज-प्रश्नीय में राजा प्रदेशी और केशीकुमार श्रमण का अध्यात्म-सम्वाद सजीव एवं मधुर है। प्रज्ञापना में तत्त्व-चिन्तन गम्भीर, पर बहुत ही व्यवस्थित है। आगमों में सर्वत्र जीवन-स्पर्शी विचारों का प्रवाह परिलक्षित होता है।

आगम-प्रामाण्य के विषय में मतभेद

आगम प्रामाण्य के विषय में एक मत नहीं है। श्वेताम्बर मूर्ति-पूजक परम्परा ११ अंग १२ उपांग ४ मूल २ चूलिका सूत्र ६ छेद, १० प्रकीर्णक—इसी प्रकार ४५ आगमों को प्रमाण मानती

है। इनके अतिरिक्त निर्युक्ति, भाष्य, चर्णि और टीका—इन सबको भी प्रमाण मानती है, और आगम के समान ही इनमे भी श्रद्धा रखती है।

श्वेताम्बर स्थानकवासी परम्परा और श्वेताम्बर तेरापन्थी परम्परा केवल ११ अङ्ग, १२ उपाग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक—इस प्रकार ३२ आगमो को प्रमाण-भूत स्वीकार करती है, शेष आगमो को नहीं। इनके अतिरिक्त निर्युक्ति, भाष्य, चर्णि और टीकाओ को भी सर्वांशत प्रमाण-भूत स्वीकार नही करती।

दिगम्बर परम्परा उक्त समस्त आगमो को अमान्य घोषित करती है। उसकी मान्यता के अनुसार सभी आगम लुप्त हो चुके हैं। अत वह ४५ या ३२ तथा निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका—किसी को भी प्रमाण नही मानती।

दिगम्बर आगम

दिगम्बर परम्परा का विश्वास है, कि वीर निर्वाण के बाद श्रुत का क्रमश ह्रास होता गया। यहाँ तक ह्रास हुआ कि वीर निर्वाण के ६८३ वर्ष के बाद कोई भी अगधर अथवा पूर्वधर नही रहा। अग और पूर्व के अशधर कुछ आचार्य अवश्य हुए हैं। अश और पूव के अग ज्ञाता आचार्यों की परम्परा मे होने वाले पुष्पदन्त और भूतिबलि आचार्यों ने पट् खण्डागम की रचना द्वितीय अग्राह्यणीय पूव के अश के आधार पर की और आचार्य गुणधर ने पाचवें पूर्व ज्ञान-प्रवाद के अश के आधार पर कषाय पाहुड की रचना की। भूतबलि आचार्य ने महाबन्ध की रचना की। उक्त आगमो का विषय मुख्य रूप मे जीव और कर्म है। बाद मे उक्त ग्रन्थो पर आचार्य वीर सेन ने धवला और जय धवला टीकाएँ की। ये टीकाएँ भी उक्त परम्परा को मान्य हैं। दिगम्बर परम्परा का सम्पूर्ण साहित्य आचार्य द्वारा रचित है।

आचार्य कुन्द-कुन्द के प्रणीत ग्रन्थ—समयसार, प्रवचनसार, नियमसार आदि भी आगमवत् मान्य हैं—दिगम्बर परम्परा मे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती के ग्रन्थ—गोमटसार, लब्धि-सार और द्रव्य-सग्रह आदि भी उतने ही प्रमाण-भूत तथा मान्य हैं। आचार्य कुन्द-कुन्द के ग्रन्थो पर आचार्य अमृतचन्द्र ने अत्यन्त प्रौढ एव गम्भीर टीकाएँ की हैं। इस प्रकार दिगम्बर साहित्य भले ही बहुत प्राचीन न हो, फिर भी वह परिमाण मे विशाल है, और उर्वर एव सुन्दर है।

आगम-साहित्य की परिचय-रेखा

आगम-साहित्य विपुल, विशाल और विराट् है, उसका पूर्ण परिचय एक लेख मे नही दिया जा सकता। प्रस्तुत लेख मे, आगम और उसके परिवार की केवल परिचय रेखा ही दी गई है। यदि आगम के एक-एक अग का पूण परिचय दिया जाए, तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की ही रचना हो जाए। आवश्यकता तो इस बात की है, कि आगम, निर्युक्ति भाष्य, चर्णि, टीका, टब्बा और अनुवाद—सभी पर एक-एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की जाए, जिससे आगम साहित्य का सर्वाङ्गीण परिचय जन-चेतना के सम्मुख प्रस्तुत किया जा

वर्तमान काल में

धर्म दर्शन संस्कृति और आगमों की रक्षा देख कर, यह विचार पैदा होता है, कि क्या आज के सभी श्वेताम्बर सम्प्रदाय-मूर्तिपूजक स्थानकवासी और तेरापन्थी—मिलकर, उपलब्ध आगमों का सुन्दर सम्पादन करने के लिए एकत्रित होकर विचार नहीं कर सकते ?

आगमों की भाषा

आगमों की भाषा अर्ध-मागधी है। जैन अनुश्रुति के अनुसार तीर्थंकर अर्ध-मागधी में उपदेश करते हैं। इसको देव-वाणी कहा गया है। अर्ध-मागधी को बोलने वाला भाषार्य कहा जाता है। यह भाषा मगध के एक भाग में बोली जाती है, इसलिए इसको अर्ध-मागधी कहते हैं। इसमें अठारह देशी भाषाओं के लक्षण मिश्रित हैं। भगवान् महावीर के शिष्य—मगध मिथिला काशी कौशल आदि अनेक देशों के थे। आगमों की भाषा में देश्य शब्दों की प्रचुरता है। जिनदासमहत्तर की व्याख्या के अनुसार मागधी और देश्य शब्दों का मिश्रण अर्ध-मागधी है। कुछ विद्वान इसको प्राकृत भाषा भी कहते हैं।

विषय-प्रतिपादन

आगमों में धर्म दर्शन संस्कृति तत्त्व गणित ज्योतिष खगोल भूगोल इतिहास—सभी प्रकार के विषय यथाप्रसङ्ग आ जाते हैं। दश वैकालिक और आचाराङ्ग में मुख्य रूप से साधु के आचार का वर्णन है, सूत्रकृतांग में दार्शनिक विचारों का गहरा मन्थन है। स्थानांग और समवायांग में आत्मा कर्म इन्द्रिय शरीर, भूगोल खगोल प्रमाण नय और निक्षेप आदि का वर्णन है। भगवती में गौतम गणधर और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तर हैं। ज्ञाता में विविध विषयों पर रूपक और दृष्टान्त हैं। उपासक दशा में दश श्रावकों के जीवन का सुन्दर वर्णन है। अन्तकृद् और अनुत्तरौपपातिक में साधकों के त्याग एवं तप का बड़ा सजीव चित्रण है। प्रश्न व्याकरण में पाँच आस्रव और पाँच संवर का सुन्दर वर्णन किया है। विपाक में कथाओं द्वारा पुण्य और पाप का फल बतलाया गया है। उत्तराध्ययन में अध्यात्म उपदेश दिया गया है। नन्दी में पाँच ज्ञान का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। अनुयोगद्वार में नय एवं प्रमाण का वर्णन है। छेद सूत्रों में उत्सर्ग-अपवाद का वर्णन है। राज-प्रश्नीय में राजा प्रदेशी और केशीकुमार श्रमण का अध्यात्म-सम्वाद सजीव एवं मधुर है। प्रज्ञापना में तत्त्व-चिन्तन गम्भीर, पर बहुत ही व्यवस्थित है। आगमों में सर्वत्र जीवन-स्पर्शी विचारों का प्रवाह परिलक्षित होता है।

आगम-प्रामाण्य के विषय में मतभेद

आगम-प्रामाण्य के विषय में एक मत नहीं है। श्वेताम्बर मूर्ति-पूजक परम्परा ११ अंग १२ उपांग ४ मूल २ चूलिका सूत्र ६ छेद १० प्रकीर्णक—इसी प्रकार ४५ आगमों को प्रमाण मानती

आगमो के निगूढ-भावो को स्पष्ट करना ही एक मात्र निर्युक्तिकार का लक्ष्य होते हुए भी प्रसग-वश इनमे धर्म, दशन, सस्कृति, समाज, इतिहास और विविध विषयो पर वडा सुन्दर विवेचन उपलब्ध हो जाता है। कुछ प्रसिद्ध निर्युक्तियाँ ये है—

१ आवश्यक
२ दशवैकालिक
३ उत्तराध्ययन
४ आचाराग
५ सूत्रकृताग
६ दशाश्रुत स्कन्ध
७ वृहत्कल्प
८ व्यवहार
९ ओघ
१० पिण्ड
११ ऋषि-भाषित

इनके अतिरिक्त निशीथ निर्युक्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ससक्त निर्युक्ति, गोविन्द निर्युक्ति और आराधना निर्युक्ति भी प्रसिद्ध हैं। निर्युक्तियो का अनुसन्धान अभी नही हो पाया है। अत निर्युक्तियो की सख्या का निर्धारण नही किया जा सकता। यहाँ पर उपलब्ध निर्युक्तियों का सक्षिप्त परिचय देना ही अभीष्ट है।

आवश्यक-निर्युक्ति

आचार्य भद्रवाहु की यह सर्व प्रथम कृति है। विषय-वहुलता की दृष्टि से और विपुल परिमाणता की दृष्टि से यह वहुत ही महत्वपूर्ण है। इसकी उपयोगिता और लोकप्रियता का सबसे प्रबल प्रमाण यही है, कि इस पर अनेक आचार्यों ने सक्षिप्त और विस्तृत टीकाएँ लिखी हैं। टीकाकारो मे—जिनभद्र, जिनदास गणि, हरिभद्र, कोट्याचाय, मलयगिरि, मलधारी हेमचन्द्र और माणिक्य शेखर जैसे समर्थ विद्वान हैं। आवश्यक निर्युक्ति पर आचार्य जिनभद्र-कृत विशेषावश्यक-भाष्य एक विशालकाय ग्रन्थराज है। प्रत्येक विषय को स्पष्ट और विस्तार से समझाने का सफल प्रयास है। सस्कृत टीकाकारो मे आचाय मलयगिरि ने प्राञ्जल भाषा मे विशद व्याख्या की है।

इसमे ज्ञानवाद, गणधरवाद और निन्हववाद का सक्षेप मे कथन है। सामायिक के स्वरूप का वणन गम्भीर होते हुए भी रुचिकर है। शिल्प, लेखन और गणित आदि कलाओ का उल्लेख ऋषभ जीवन के प्रसग मे हुआ है। व्यवहार, नीति और युद्ध का वर्णन भी आया है। चिकित्सा, अर्थशास्त्र और उत्सवो का वर्णन भी यथा प्रसग आया है। उस युग के प्रसिद्ध नगर अयोध्या, हस्तिनापुर, श्रावस्ती

सकें। फिर आज तो मूल आगमों के अनुसंधान की बहुत बड़ी आवश्यकता है। मूल आगमों में जो विविध विषय आए हैं उन पर भी तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार होना चाहिए। आगमों में तथा उनके परिवार में धर्म दर्शन और संस्कृति के मूल तत्त्व भरे पड़े हैं। अभी तक आगमों का अध्ययन-अध्यापन केवल धार्मिक दृष्टि से ही होता रहा है परन्तु अब समय आ गया है कि उनका अध्ययन मनन और मानव-संस्कृति समाज और इतिहास की दृष्टि से भी हो। हर्ष है कि कुछ विद्वानों का ध्यान इस विषय पर गया है, और कुछ ने तो उस प्रकार के अध्ययन ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत भी किए हैं। किन्तु इस दृष्टिकोण का व्यापक प्रचार और प्रसार होना चाहिए। मूल आगमों के विभिन्न विषयों पर विविध दृष्टि-कोण से लिखने का यह युग है। केवल संस्कृत और प्राकृत टीकाओं से आज का जन-मानस सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

निर्युक्ति-परिचय

यह आगमों पर सब से पहली और सब से प्राचीन व्याख्या मानी जाती है। निर्युक्ति प्राकृत-भाषा में और पद्यबद्ध रचना है। सूत्र में कथित अर्थ जिस में उपनिबद्ध हो उसे निर्युक्ति कहा गया है—"निज्जुत्ता ते अत्था ज बद्धा तेण होइ निज्जुत्ती।" आचार्य हरिभद्र ने निर्युक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है—"निर्युक्तानामेव सूत्रार्थानां युक्तिः—परिपाट्या योजनम्।" 'निर्युक्ति' शब्द की प्राकृत और संस्कृत दोनों परिभाषाओं से यही फलितार्थ होता है, कि सूत्र में कथित एवं निश्चित अर्थ को स्पष्ट करना निर्युक्ति है। दूसरे शब्दों में "निर्युक्ति प्राकृत-भाषाओं में आगमों पर लिखा संक्षिप्त विवरण है।" आगे चलकर निर्युक्ति पर भाष्य और टीका लिखी गई।

निर्युक्ति की उपयोगिता यह है कि संक्षिप्त और पद्यबद्ध होने के कारण यह साहित्य सुगमता के साथ में कण्ठस्थ किया जा सकता था। निर्युक्ति की भाषा प्राकृत और रचना छन्द में होने से इसमें सहज ही सरलता और मधुरता की अभिव्यक्ति होती है।

निर्युक्ति के प्रणेता आचार्य भद्रबाहु माने जाते हैं। कौन-से भद्रबाहु? प्रथम अथवा द्वितीय। इस विषय में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। परन्तु कुछ इतिहास-विदों का अभिमत है, कि निर्युक्ति रचना का आरम्भ तो प्रथम भद्रबाहु से ही हो जाता है। निर्युक्तियों का समय संवत् ४ से १ तक माना गया है। किन्तु ठीक-ठीक काल निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। काल निर्णय करना यहाँ अभीष्ट नहीं है।

आगमो के निगूढ-भावो को स्पष्ट करना ही एक मात्र निर्युक्तिकार का लक्ष्य होते हुए भी प्रसग-वश इनमे धर्म, दर्शन, सस्कृति, समाज, इतिहास और विविध विषयो पर बडा सुन्दर विवेचन उपलब्ध हो जाता है। कुछ प्रसिद्ध निर्युक्तियाँ ये हैं—

१ आवश्यक
२ दशवैकालिक
३ उत्तराध्ययन
४ आचाराग
५ सूत्रकृताग
६ दशाश्रुत स्कन्ध
७ वृहत्कल्प
८ व्यवहार
९ ओघ
१० पिण्ड
११ ऋषि-भाषित

इनके अतिरिक्त निशीथ निर्युक्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ससक्त निर्युक्ति, गोविन्द निर्युक्ति और आराधना निर्युक्ति भी प्रसिद्ध हैं। निर्युक्तियो का अनुसन्धान अभी नही हो पाया है। अत निर्युक्तियो की सख्या का निर्धारण नही किया जा सकता। यहाँ पर उपलब्ध निर्युक्तियो का सक्षिप्त परिचय देना ही अभीष्ट है।

आवश्यक-निर्युक्ति

आचार्य भद्रबाहु की यह सब प्रथम कृति है। विषय-बहुलता की दृष्टि से और विपुल परिमाणता की दृष्टि से यह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसकी उपयोगिता और लोकप्रियता का सबसे प्रबल प्रमाण यही है, कि इस पर अनेक आचार्यों ने सक्षिप्त और विस्तृत टीकाएँ लिखी हैं। टीकाकारो मे—जिनभद्र, जिनदास गणि, हरिभद्र, कोटयाचार्य, मलयगिरि, मलधारी हेमचन्द्र और माणिक्य शेखर जैसे समर्थ विद्वान हैं। आवश्यक निर्युक्ति पर आचार्य जिनभद्र-कृत विशेषावश्यक-भाष्य एक विशालकाय ग्रन्थराज है। प्रत्येक विषय को स्पष्ट और विस्तार से समझाने का सफल प्रयास है। सस्कृत टीकाकारो मे आचार्य मलयगिरि ने प्राञ्जल भाषा मे विशद व्याख्या की है।

इसमे ज्ञानवाद, गणधरवाद और निह्नववाद का सक्षेप मे कथन है। सामायिक के स्वरूप का वर्णन गम्भीर होते हुए भी रुचिकर है। शिल्प, लेखन और गणित आदि कलाओ का उल्लेख ऋषभ जीवन के प्रसग मे हुआ है। व्यवहार, नीति और युद्ध का वर्णन भी आया है। चिकित्सा, अर्थशास्त्र और उत्सवो का वर्णन भी यथा प्रसग आया है। उस युग के प्रसिद्ध नगर अयोध्या, हस्तिनापुर, श्रावस्ती

राजगृह, मिथिला द्वारका और कोल्लाक ग्राम आदि का उल्लेख है। विवाह, मृतक पूजन यति और स्तूप आदि सामाजिक परम्पराओं का वर्णन मिलता है। वन्दन ध्यान प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग आदि की विशेष पद्धति से व्याख्या की गई है।

वर्णन में कहीं-कहीं पर बड़ा प्रसंग सुन्दर सूक्तियाँ सहज ही प्रकट हो जाती हैं। जैसे—

"जहा खरो चंदण-भार-वाही,
भारस्स भागी न हु चन्दणस्स।

गर्दभ कभी भी चंदन के महत्व का अंकन नहीं कर सकता। वह केवल उसके भार का ही अनुभव कर पाता है।

"हयं नाणं किया-हीणं।

क्रिया-रहित ज्ञान व्यर्थ है। ज्ञान की सफलता तभी है जब वह आचार में उतरे।

"न हु एग-चक्केण रहो पयाइ।

एक पहिये से रथ कभी नहीं चलता। रथ की गति के लिए दोनों चक्र स्वस्थ और सशक्त होने चाहिए।

इसमें धर्म दर्शन तत्व और संस्कृति के उपकरण बिखरे पड़े हैं।

दशवैकालिक-निर्युक्ति

इसमें साधु के आचार का वर्णन किया गया है। अहिंसा संयम और तप का सुन्दर वर्णन है। श्रमण की विहंगम से तुलना की है। तथा प्रसंग प्राप्त रत्न और अनेक विध धान्यों का वर्णन किया है। भोग और काम से दूर रहने का हृदय-स्पर्शी उपदेश दिया है। दो प्रकार के कामों का कथन है—सम्प्राप्त और असम्प्राप्त।

इस पर भी अनेक टीकाएँ और चूर्णि लिखी गई हैं। जिनदास महत्तर की चूर्णि प्रसिद्ध है। इसमें बताया गया है, कि साधक को साधना के मार्ग पर किस प्रकार स्थिर रहना चाहिए। पतन से कैसे बचना चाहिए। कथा के चार भेदों का—आक्षेपणी विक्षेपणी संवेगनी और निर्वेदनी का सुन्दर वर्णन है। यथाप्रसंग सुभाषित वचन भी आते रहते हैं।

उत्तराध्ययन-निर्युक्ति

इसमें उत्तर और अध्ययन शब्दों की व्याख्या की है। श्रुत और स्कन्ध को समझाया गया है। गलि और आकीर्ण का दृष्टान्त देकर शिष्यों की दशा का वर्णन किया है। कपिल और नमि का उल्लेख

है। इसमे शिक्षाप्रद कथानको की बहुलता है। मरण की व्याख्या के प्रसग पर सतरह प्रकार के मरण का उल्लेख किया गया है। इस निर्युक्ति मे गन्धार श्रावक, तोसलि पुत्र, स्थूलभद्र, कालक, स्कन्दक पुत्र और करकण्डू आदि का जीवन सकेत है। निन्हवो का वर्णन है। राजगृह के वैभार आदि पर्वतो का उल्लेख है। सूक्ति-वचनो की मधुरिमा पाठक के मन को उल्लसित कर देती है। एक नारी अपनी सखी से अपने पति के आलस्य के सम्बन्ध मे क्या कहती है—

"अइरुग्गयए य सूरिए,
चेइयथूभगए य वायसे।
भित्ती-गयए व आयवे,
सहि! सुहिओ हु जणो न बुज्झइ।"

सूर्य का उदय हो चुका है। चैत्य स्तम्भ पर बैठ-बैठ कर काक बोल रहे हैं। सूर्य का प्रकाश ऊपर दीवारो पर चढ गया है, किन्तु फिर भी हे सखि! यह अभी सो ही रहे हैं। इस प्रकार के अन्य भी बहुत से प्रसग इस उत्तराध्ययन निर्युक्ति मे आते हैं।

आचाराग-निर्युक्ति

इसमे विविध विषयो का वर्णन उपलब्ध होता है। आचार क्या है? इस पर गम्भीरता से विचार किया गया है। प्रारम्भ मे आचाराग प्रथम अग क्यो हैं? और इसका परिमाण क्या है? इस पर प्रकाश डाला गया है। मनुष्य जाति के वर्ण और वर्णान्तरो का वर्णन किया गया है। लोक, विजय, कर्म, सम्यक्त्व, विमोक्ष, श्रुत, उपधान और परिज्ञा आदि शब्दो की सुन्दर व्याख्या की है।

आचाराग-सूत्र के मूल पर और इसकी निर्युक्ति पर आचार्य शीलाक ने बडे विस्तार के साथ मे बहुत ही गम्भीर टीका की है। आचाराग को समझने के लिए शीलाक की टीका का अध्ययन करना ही पडेगा। शीलाक के पाण्डित्य की कदम-कदम पर अभिव्यक्ति होती है। इसमे आचाराग को प्रवचन का सार बताया गया है। देखिए—

"अगाण किं सारो? आयारो।"

अर्थात् आचाराग समस्त अगो का सार है।

सूत्रकृताग-निर्युक्ति

प्रारम्भ मे "सूत्रकृताग" शब्द की व्याख्या की है। प्रसगवश गाथा, षोडश, विभक्ति, समाधि, आहार और प्रत्याख्यान आदि शब्दो की व्याख्या भी दी है। सब पर निक्षेप घटाने का सफल प्रयत्न है। इसमे ३६३ मतो का भी उल्लेख है। मुख्य रूप मे चार भेद हैं—क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और वैनयिक। निर्युक्ति मे जो विषय सक्षिप्त हैं, टीका मे उसका विस्तार कर दिया गया है।

आचारांग के समान सूत्रकृतांग सूत्र की निर्युक्ति और मूल दोनों पर ही आचार्य शीलांक की विस्तृत एवं गम्भीर टीका है। दार्शनिक मान्यताओं का खण्डन और मण्डन बड़े विस्तार से किया गया है।

दशाश्रुतस्कन्ध-निर्युक्ति

इसके प्रारम्भ में चरम सकल श्रुतज्ञानी भद्रबाहु को नमस्कार किया गया है। समाधि आशातना और शबल शब्द की सुन्दर व्याख्या की है। गणी और उसकी सम्पदाओं का विस्तृत वर्णन है। चित्त उपासक प्रतिमा और पर्युषण आदि का निक्षेप-पद्धति के साथ विवेचन किया गया है। इसमें पर्युषण के पर्याय-वाची शब्द इस प्रकार हैं—पर्युषण पर्युपशमना परिवसना वर्षावास स्थापना और ज्येष्ठग्रह आदि। कल्प सूत्र का भी इसमें उल्लेख है। यह निर्युक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

बृहत्कल्प-निर्युक्ति

यह निर्युक्ति स्वतन्त्र न रहकर बृहत्कल्प भाष्य में मिश्रित हो चुकी है। दोनों को आजकल में भेद करना कठिन हो गया है। इसमें ताल और प्रलम्ब का विस्तृत वर्णन है। ग्राम क्या है? नगर क्या है? पत्तन क्या है? द्रोणमुख क्या है? निगम क्या है? और राजधानी क्या है? आदि का रोचक वर्णन है। उपाश्रय और उपाधि की व्याख्या की है। कल्प और अधिकरण का सुन्दर विवेचन है। यथाप्रसंग लोक-कथाओं का उल्लेख है।

साधु और साध्वी के आचार का आहार का और विहार का वर्णन संक्षेप में होते हुए भी बहुत सुन्दर है। इस निर्युक्ति को समझने के लिए इसके भाष्य और भाष्य की संस्कृत टीका का सहारा लेना पड़ता है।

व्यवहार-निर्युक्ति

यह निर्युक्ति भी अपने भाष्य में विलीन हो चुकी है। इसमें साधु-जीवन से सम्बद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का संक्षेप में वर्णन है। कल्प और व्यवहार की निर्युक्ति, परस्पर शैली भाव और भाषा में बहुत कुछ मिलती-जुलती-सी है। साधना के तथ्य सिद्धान्तों का दोनों में प्राय: समान वर्णन है।

निशीथ-निर्युक्ति

निशीथ-सूत्र की सब से पहले निर्युक्ति व्याख्या बनी। मूल-पाठ शब्दों की व्याख्या निक्षेप पद्धति से की है। बृहत्कल्प और व्यवहार निर्युक्ति के समान निशीथ निर्युक्ति भी अपने भाष्य में मिल गई है। चूर्णिकार कहीं संकेत कर देते हैं वहीं पर पता लगता है कि यह निर्युक्ति गाथा है और यह भाष्य गाथा है। निर्युक्ति और भाष्य दोनों मिलकर एक ग्रन्थ बन गया है। उसकी सत्ता अलग नहीं रही। कहने को कभी आज भी हम अलग कहते हैं।

निशीथ निर्युक्ति आचार्य भद्रबाहु-कृत है, इसका स्पष्ट उल्लेख चूर्णिकार ने स्वय इस प्रकार किया है—"आचार्य भद्रबाहु स्वामी निर्युक्ति-गाथा माह।"

निशीथ सूत्र मूल, इसकी निर्युक्ति उसका भाष्य और उसकी चूर्णि—इन चारो का प्रकाशन सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा से हो चुका है। इसका सम्पादन उपाध्याय अमर मुनि जी महाराज ने बडे श्रम के साथ किया है। चार भागो मे प्रकाशन हुआ है।

निशीथ, कल्प और व्यवहार—तीनो निर्युक्तिया अपने-अपने भाष्यो मे विलीन हो जाने से स्वतन्त्र न रह सकी। फिर भी बीच-बीच मे चूर्णिकार और टीकाकार कही-कही पर सकेत कर देते है। जैसे—"एसा चिरतण-गाहा।"

उक्त तीनो निर्युक्तियो का विषय प्राय समान है। अधिकतर साधु के आचार का वर्णन है। यथाप्रसग अन्य बहुत-से विषय आ जाते हैं।

पिण्ड-निर्युक्ति

पिण्ड का अर्थ है—भोजन। इसमे आहार के उद्गम, उत्पादन, एषणा आदि दोषो का विस्तृत वर्णन है। यह आचार्य भद्रबाहु की कृति है। इसमें साधु-जीवन की आहार-विधि का वर्णन है। इसकी गणना मूल सूत्रो में की है।

इसमें आठ अधिकार हैं—उद्गम, उत्पादन, एषणा, सयोजना, प्रमाण, अगार, धूम और कारण। इस पर सस्कृत में आचार्य मलयगिरि ने बृहद् वृत्ति लिखी और आचार्य वीर ने लघुवृत्ति लिखी।

ओघ-निर्युक्ति

ओघ का अर्थ है—सामान्य, साधारण। साधु-जीवन की सामान्य समाचारी का इसमे वर्णन किया गया है। इसके प्रणेता आचार्य भद्रबाहु हैं। आवश्यक निर्युक्ति का ही यह एक अग है। ओघ निर्युक्ति की गणना मूल सूत्रो मे की गई है। आचार्य द्रोण और आचार्य मलयगिरि ने इस पर सस्कृत टीका लिखी है। इसमे प्रतिलेखन, उपधि, प्रतिसेवना आलोचना और विशुद्धि आदि विषयो पर लिखा गया है।

ससक्त-निर्युक्ति

यह निर्युक्ति किस आगम पर लिखी गई ? इसका उल्लेख नही मिलता। वैसे चौरासी आगमो मे उसका उल्लेख है। कहा जाता है, कि यह भी आचार्य भद्रबाहु की एक लघु रचना थी।

गोविन्द-निर्युक्ति

इस निर्युक्ति को दर्शन-प्रभावक शास्त्र कहा जाता है। इससे प्रतीत होता है कि इसमें दर्शन-शास्त्र के तथ्यों का वर्णन होगा। एकेन्द्रिय जीवों की सिद्धि करने के लिए आचार्य गोविन्द ने इसकी रचना की। बृहत्कल्प भाष्य में आवश्यक चूर्णि में और निशीथ चूर्णि में इसका उल्लेख है। यह किसी आगम पर न होकर स्वतन्त्र थी। पर आज यह उपलब्ध नहीं है।

आराधना-निर्युक्ति

आराधना निर्युक्ति अभी उपलब्ध नहीं है। चौरासी आगमों में 'आराधना पताका' एक आगम था। सम्भवतः उसी पर यह निर्युक्ति हो? इस विषय में अनुसन्धान की आवश्यकता है। वट्टकेर ने अपने मूलाचार में इसका उल्लेख किया है।

ऋषि भाषित-निर्युक्ति

चौरासी आगमों में ऋषि-भाषित भी एक आगम है। प्रत्येक बुद्धों द्वारा भाषित होने से इसे ऋषि-भाषित कहा जाता है। इसके पैंतालीस अध्ययनों में प्रत्येक बुद्धों के जीवन दिए गए हैं।

इस पर आचार्य भद्रबाहु ने निर्युक्ति लिखी थी जो आज उपलब्ध नहीं है।

सूर्यप्रज्ञप्ति-निर्युक्ति

आचार्य भद्रबाहु ने सूर्यप्रज्ञप्ति पर भी निर्युक्ति की रचना की थी। परन्तु वह आज अनुपलब्ध है। आचार्य मलयगिरि ने अपनी टीका में इसका उल्लेख किया है। परम्परा में कहा जाता है, कि इसमें ज्योतिष-शास्त्र के तथ्यों का बहुत सुन्दर वर्णन था। सूर्य की गति आदि का भी वर्णन था।

भाष्य-परिचय

भाष्य भी आगमों की व्याख्या है। परन्तु निर्युक्ति की अपेक्षा भाष्य विस्तार में होता है। भाष्यों की भाषा प्राकृत होती है, और निर्युक्ति की तरह भाष्य भी पद्य में होते हैं। भाष्यकारों में संघदास गणि और जिनभद्र क्षमाश्रमण विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। विद्वान इनका समय विक्रम की सातवीं सदी मानते हैं।

वृहत्कल्प भाष्य, व्यवहार भाष्य और निशीथ भाष्य—ये तीनो भाष्य बहुत विस्तृत है, इनमे साधु के आचार का मुख्य रूप मे वर्णन होते हुए भी यथाप्रसग इनमे धर्म, दर्शन, सस्कृति और परम्परा के भी मौलिक तत्व बिखरे पडे है। विविध देशो का, विविध भाषाओ का और समुद्र-यात्राओ का बडा ही रोचक वर्णन है।

आचार्य जिनभद्र क्षमाश्रमण कृत विशेषावश्यक भाष्य मे जैन तत्व-ज्ञान को बहुत ही विस्तार के साथ मे प्रस्तुत किया है। यह ज्ञान का एक महासागर है। तत्व ज्ञान के क्षेत्र मे इतना विशाल अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। मुख्य रूप मे नीचे लिखे भाष्य ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध है —

१ वृहत्कल्प
२ व्यवहार
३ निशीथ
४ विशेषावश्यक
५ पञ्चकल्प
६ जीतकल्प
७ लघुभाष्य

वृहत्कल्प-भाष्य

यह भाष्य बडा ही महत्वपूर्ण है। इसमे साधु-जीवन के आचार का विस्तार से वर्णन है। साधु के आहार, और दिन-चर्या का मौलिक रूप मे वर्णन किया है। उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का वर्णन बहुत विस्तृत है।

सम्यक्त्व और पाँच ज्ञान का सक्षिप्त मे उल्लेख है। साध्वियो को दृष्टिवाद के अध्ययन का निषेध है। आचार्य कालक सुवर्ण-भूमि गए थे, इसका उल्लेख है। जिन-कल्प और स्थिर-कल्प मे क्या भेद है ? इसका बडे विस्तार से वर्णन किया गया है। सूत्र परिषदा और लौकिक परिषदा का मनोरजक वर्णन है। प्रशस्त भावना क्या है ? अप्रशस्त भावना क्या है ? उस युग मे लोगो के रहने के घर कैसे होते थे ? और वे कैसे बनाए जाते थे। साधु को देशाटन करना चाहिए, और वहाँ की विभिन्न भाषाओ को सीखना चाहिए। रुग्ण साधु की चिकित्सा कैसे करना। विचार-भूमि, विहार-भूमि और आर्य-क्षेत्र की व्याख्या बहुत सुन्दर है।

राग और द्वेष नही करना चाहिए। राग कैसे उत्पन्न होता है, इसका सुन्दर और मनोवैज्ञानिक वर्णन है। कहा गया है कि—

"सदसरणेण पीई, पीईउ रईउ वीसभो।
वीसभाओ पणओ, पचविह वड्ढए पिम्म ॥

परिचय से प्रीति, प्रीति से रति, रति से विश्वास और विश्वास से प्रणय की अभिवृद्धि होती है। रति का अर्थ है—आसक्ति और प्रणय का अर्थ है—राग। अतः साधु को कभी किसी के साथ रति और प्रणय नहीं करना चाहिए। इससे साधु के संयमी जीवन का पतन हो जाता है।

शील की रक्षा कैसे की जाए? विशेषतः तरुणी साध्वियों की रक्षा का प्रश्न बड़ा ही पेचीदा था। विहार-यात्रा में आहार-पानी की समस्या विकट बन जाती थी। अतः उस युग के आचार्य एक देश से दूसरे देश में जाने के लिए सार्थवाहों की खोज में रहते थे। सार्थवाहों का वर्णन बहुत ही रोचक है।

आचार्य अपने शिष्यों को उपदेश दिया करता था कि स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करो। प्रमाद से संचित ज्ञानराशि विस्मृत हो जाती है। आचार्य कहता है—

> "जागरह नरा ! णिच्चं
> जागरमाणस्स वड्ढते बुद्धी।
> जो सुवति न सो धन्नो
> जो जग्गति सो सया धन्नो ॥"

साधको! सदा सावधान रहो। कभी प्रमाद मत करो। जागरण-शील साधक की बुद्धि सदा विकसित रहती है। जो सोता है, वह अपने ज्ञान-धन को खोता है और जो जागता है, वह नये ज्ञान को प्राप्त करता है।

इस भाष्य में पाँच प्रकार के वस्त्रों का वर्णन है—जांगमिक, भांगिक, सानक, पोतक और तिरीट। भाण्डशालाओं का वर्णन है। उस युग में खाने-पीने की बहुत-सी वस्तुओं का उल्लेख है।

शील और लज्जा को नारी-जीवन का विशेष भूषण बताया है। नारी का आभूषण वस्तुतः शील और लज्जा ही है—

> "न भूसणं भूसयते सरीरं
> सील-हिरी य इत्थिए।
> गिरा हि संखार-जुया वि संसती
> अपेसला होइ असाहु-वादिणी ॥"

आभूषणों से नारी का शरीर शोभित नहीं होता, उसका भूषण तो शील और लज्जा ही है। मधुर गिरा सबको प्रिय लगती है और कटु वचन मन को पीड़ा देता है।

उज्जयिनी, राजगृह और तोसली नगर के विशाल बाजारों का वर्णन है, जहाँ पर सब कुछ मिलता, कुछ भी अप्राप्य नहीं था। अनेक प्रकार के पकवानों का वर्णन भी है। आहार-विधि, पान-विधि

अधिकरण, मोक और परिवासित आदि का विस्तार से वर्णन है। कटक, उद्धरण, दुर्ग और क्षिप्तचित्त आदि का विवेचन किया है, मथुरा मे देवनिर्मित स्तूप का वर्णन है, जिसके लिए कभी जैन और बौद्धो मे तीव्र सघर्ष चला था। जीर्ण, खण्डित और अल्पवस्त्र धारण करने वाले निर्ग्रन्थ को भी अचेलक कहा गया है। आठ प्रकार के राज-पिण्ड का वर्णन किया है।

कभी किसी वस्तु विशेष पर यदि साधुओ मे मतभेद अथवा सघर्ष हो जाए, तो क्या करना चाहिए ? कहा गया है कि—

"विणास-धम्मीसु हि किं ममत्त।"

ससार की वस्तुएँ विनाश-शील हैं। अत उन पर ममता क्यो की जाए ? ऐसा विचार करो।

सबको अपने समान समझो। कभी किसी के साथ बुरा व्यवहार मत करो। कहा है—

**"ज इच्छसि अप्पणतो, ज च ण इच्छसि अप्पणतो।
त इच्छ परस्स वि या, एत्तियग जिण-सासणय।"**

जैसा व्यवहार तुम दूसरो से चाहते हो, वैसा ही तुम भी दूसरो के साथ करो। भगवान् के उपदेश का सार यही है, और अहिंसा का व्यापक दृष्टिकोण भी यही है।

व्यवहार-भाष्य

परिमाण मे व्यवहार-भाष्य वृहत्कल्प भाष्य से कुछ ही छोटा होगा, अन्यथा वरावर है। व्यवहार भाष्य पर मलयगिरि ने विवरण लिखा है। व्यवहार मे साधु और साध्वियो के आचार, विचार, तप, प्रायश्चित्त और चर्या का वणन है। आलोचना का वहुत विस्तार किया गया है। शुद्ध भाव से आलोचना करना साधु-जीवन के लिए प्रधान कर्तव्य माना है। जैसे वालक अपने माता-पिता के सामने अपने अच्छे और बुरे कर्मों को स्पष्ट रूप मे कह देता है, वैसे ही शिष्य को भी अपने आचार्य के समक्ष अपने अपराध को स्पष्ट स्वीकार कर लेना चाहिए, जिससे उस का प्रायश्चित्त लेकर विशुद्धि की जा सके। जीवन की परम-शुद्धि साधक के जीवन को पावन और पवित्र वना देती है।

गण के अथवा गच्छ के सचालन के लिए आचाय की परम आवश्यकता है। नृत्य के विना नट का मूल्य नही, नर के विना नारी का मूल्य नही, धुरी के विना चक्र का मूल्य नही, वैसे ही आचार्य के विना गण अथवा गच्छ का मूल्य नही। जैसे वल और वाहन के विना राजा अपने राज्य की रक्षा नही कर सकता, वैसे ही आचार्य भी अपनी सम्पदाओ से ही अपने गण की रक्षा कर सकता है, अन्यथा नही।

कदम-कदम पर साधुओ को साधना पथ पर अडोल और अकम्प रहने के लिए कहा गया है। तीन प्रकार के हीन-जन होते हैं—जाति-जुगित, जैसे श्वपच, डोम्व और किणिक। कम-जुगित, जैसे नट व्याध और रजक आदि। शिल्प-जुगित, जैसे पट्टकार और नापित।

इसमें आर्य रक्षित आर्य कालक सातवाहन प्रद्योत और चाणक्य का उल्लेख है। कुशिष्य को महाव्रत मुक्त करने का निषेध है। जहाँ कुत्ते अधिक हो वहाँ साधु को विहार का निषेध है। तप, सत्त्व एकत्व सूत्र और बल—इन पाँच भावनाओं का विवेचन है। मथुरा में देव-निर्मित स्तूप का वर्णन यहाँ पर भी है। भिन्न-भिन्न देशों की भाषा और भूषा का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रतीत होता है उस युग में नारी की स्वतन्त्रता को अच्छा नहीं समझते थे। व्यवहार भाष्य युग की नारी में और मनु स्मृति की नारी में बहुत कुछ समानता है। भाष्य में नारी के लिए कहा गया है—

जाया पितिव्वसा नारी दत्ता नारी पतिव्वसा।
विहवा पुत्तवसा नारी, नत्थि नारी सयंवसा॥

बचपन में लड़की पिता की संरक्षा में रहती है, यौवन में पति के हाथों में और विधवा हो जाने पर पुत्र के अधिकार में। बेचारी नारी के भाग्य में तो दासता ही लिख दी गई है। यहाँ भाष्यकार वैदिक संस्कारों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। अथवा उस युग में यही सामाजिक नियम होगा। भारत में तो आज भी अधिकतर यही परम्परा चालू है

भाष्य में इस बात का भी उल्लेख है, कि राजसभा में वाद-विवाद में पराजित होने पर अपमानित होना पड़ता था। अन्य लोगों द्वारा भी साधुओं को पीड़ा मिलती थी। वर्षा-काल में किस स्थान में रहकर वर्षा-वास करना यह भी उस युग की एक समस्या थी। इस प्रकार साधु-जीवन से सम्बद्ध अनेक वर्णन व्यवहार में आते हैं।

निशीथ भाष्य

चूर्णिकार के मतानुसार निर्युक्ति की प्राकृत पद्यमयी व्याख्या का नाम भाष्य है। निशीथ भाष्य भी कल्प और व्यवहार की भाँति बहुत विशाल है। इसमें साधु-जीवन के आचार का विस्तार के साथ वर्णन है। इतिहास संस्कृति धर्म दर्शन ज्योतिष और भाषा की सामग्री इसमें सर्वत्र बिखरी पड़ी है। इसमें निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी संघ के कर्तव्य और अकर्तव्य के विधि-विधान के मौलिक उल्लेखों का सुन्दर संग्रह किया गया है। उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। विवेक-शून्य आचार से या तो शिथिलाचार का पोषण होता है या फिर केवल अर्थ-शून्य बाहरी आडम्बर की अभिवृद्धि होती है।

निशीथ-भाष्य की बहुत-सी गाथाएँ कल्प और व्यवहार से मिलती-जुलती है। इसमें बताया गया है, कि साधक को सदा राग-द्वेष की भावनाओं से दूर रहना चाहिए। विवेक से किया गया कार्य निर्दोष होता है —

'कर करन्तो अकारगो,
रागादीय हवेज्ज वि दोसो।'

साधक के जीवन मे यदि किसी प्रकार का राग और द्वेष नही है, तो वह साधक एक निर्दोष साधक है। सदोष साधक के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। पतन का अवसर आने पर साधक कैसा सकल्प करे। कहा गया है, कि अपने चिरसचित व्रत को किसी भी प्रकार भग न होने दे। क्योकि स्वीकृत व्रत उसके जीवन का धन है।

रात्रि-भोजन मे क्या दोष है? इसके लिए कहा गया है, कि रात्रि मे भोजन करने से मक्खी, मच्छर, बिच्छू, चीटी, पुष्प, बीज और विष आदि भोजन मे मिश्रित हो सकते है। साधु और साध्वियो का परस्पर सपर्क न करने के सम्बन्ध मे निशीथ-भाष्य मे अत्यन्त कठोर नियमो का विधान किया है। कुलटा नारियो से सावधान करने को कहा है।

विभिन्न देशो की विभिन्न भाषाओ और वेष-भूषा का वर्णन भी बीच-बीच मे यथा-प्रसग आता है। विभिन्न देशो के विभिन्न लोगो के स्वभाव का वर्णन मनोवैज्ञानिक पद्धति से किया गया है। बडे-बडे सार्थवाहो का वर्णन बडा ही रोचक किया गया है। मार्ग मे उन्हें कैसी-कैसी बाधाओ का सामना करना पडता था।

कागणी और दीनार आदि प्राचीन सिक्को का उल्लेख है। खाने और पीने की बहुत-सी चीजो का उल्लेख है, जो आज के युग मे उपलब्ध नही है। तोसली नगर मे तालोदक और राजगृह के तापोदक कुण्ड का भी उल्लेख मिलता है। सिद्धसेन और गोविन्द वाचक का उल्लेख है। अन्य बहुत-से नगरो का, वहाँ की रीति-नीतियो का वर्णन है।

उस युग की लोक-कथाओ का, लोक परम्पराओ का और लोक सस्कृतियो का सजीव वर्णन निशीथ भाष्य मे उपलब्ध होता है। समाज-शास्त्र के नियम, अर्थ शास्त्र के सिद्धान्त और राजनीति के भेदो का वर्णन भी उपलब्ध होता है। निशीथ भाष्य का सम्पादन पूज्य गुरुदेव उपाध्याय अमर मुनि जी महाराज ने किया है, और सन्मति ज्ञानपीठ ने चार बडे भागो मे उसका प्रकाशन करके महान् साहित्य-सेवा की है।

जीतकल्प-भाष्य

आचार्य जिनभद्र क्षमाश्रमण ने प्राकृत गाथाओ मे जीतकल्प सूत्र की रचना की थी। उसमे जीत व्यवहार के आधार पर प्रायश्चित्तो का सक्षिप्त वर्णन किया है। साधक के जीवन मे प्रायश्चित्त का महत्व-पूर्ण स्थान है, क्योकि मोक्ष के कारणभूत चारित्र के साथ उसका सम्बन्ध है। इस मे प्रायश्चित्त के दश भेदो का वर्णन है।

आचार्य जिनभद्र क्षमाश्रमण कृत जीतकल्प-भाष्य इसी जीतकल्प सूत्र पर है। यह भाष्य केवल जीतकल्प सूत्र पर होते हुए भी इसमे समस्त छेद सूत्रो का रहस्य आचार्य ने भर दिया है। इसमे मूलसूत्र

के एक-एक शब्द का अर्थ करने के बाद उसका भावार्थ भी स्पष्ट किया गया है। अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति भी बहुत सुन्दर रूप में लिखी है।

भाष्य में सबसे पहले प्रवचन को नमस्कार किया गया है। फिर प्रवचन शब्द की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। इसके बाद में विस्तार के साथ प्रायश्चित्त शब्द की व्युत्पत्ति और व्याख्या की है। कहा गया है—

"पावं छिंदति जम्हा
पायच्छित्तं ति भण्णेति तेणं।

क्योंकि यह पाप का छेदन करता है, इसलिए प्रायश्चित्त कहा जाता है।

पाँच प्रकार के व्यवहारों का वर्णन किया गया है—जीत, आगम, श्रुत, आज्ञा और धारणा। पाँचों का विस्तार के साथ में वर्णन है। जीत व्यवहार की व्याख्या की है कि जो परम्परा से प्राप्त हो, महाजन सम्मत हो और जिसका सेवन बहुश्रुत पुरुषों ने बार-बार किया हो। यथाप्रसंग अन्य बातों का भी उल्लेख किया है।

संक्षेप में पाँच ज्ञानों का वर्णन बहुत सुन्दर किया है। भक्त परिज्ञा, इंगिनी मरण और पादपोपगमन इन तीन प्रकार की मारणान्तिक साधनाओं का विवेचन किया है।

जीत कल्प सूत्र और उसके भाष्य का सम्पादन आगम प्रभाकर श्री पुण्य विजय जी महाराज ने किया है। उसका प्रकाशन भी हो चुका है। जीतकल्प भाष्य पर आचार्य सिद्धसेन ने चूर्णि लिखी थी। यह सिद्धसेन दिवाकर सिद्धसेन से भिन्न है। चन्द्र सूरि ने चूर्णि पर विषम पद व्याख्या लिखी है। जीतकल्प सूत्र पर भी एक चूर्णि लिखी थी। ऐसा उल्लेख सिद्धसेन ने किया है।

पञ्चकल्प-भाष्य

पञ्चकल्प सूत्र की परिगणना छेद सूत्रों में की जाती है। इसमें साधु के आचार और विचार का वर्णन था। इस पर एक भाष्य लिखा गया था जिसे पञ्चकल्प भाष्य कहा जाता है। कहा जाता है कि यह आज कल उपलब्ध नहीं है। परन्तु "जैन-भारती" के वर्ष ११ अंक २ में श्री अगरचन्द जी नाहटा का एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें पञ्चकल्प के विषय में लिखा है—

"पञ्चकल्प को अनुपलब्ध बताया गया था। पर बृहत् टिप्पणी में पञ्चकल्प का परिमाण ११३३ श्लोकों का पाया जाता है और मुझे प्राप्त प्रति में केवल १ ४ गाथाएँ ही हैं।

कल्प का अर्थ है—आचार। साधु के आचार का ही इसमें वर्णन है। पञ्चकल्प का अर्थ है—पाँच प्रकार का आचार। बृहत्कल्प भाष्य में छह प्रकार के, सात प्रकार के, दस प्रकार के, बीस प्रकार के और बयालीस प्रकार के कल्पों का भी उल्लेख है। पञ्चकल्प के विषय में अधिक ज्ञातव्य उपलब्ध नहीं होता।

पिण्ड-निर्युक्ति-भाष्य

इस भाष्य मे ४६ गाथाएँ हैं। यह भाष्य पिण्ड निर्युक्ति पर लिखा गया है। पिण्ड निर्युक्ति की मूल सूत्रों मे परिगणना की गई है। इसमे साधु जीवन के आचार और विचार के सम्बन्ध मे वर्णन किया गया है। विशेष करके इसमे साधुओ के दान लेने की विधि पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि भाष्य का परिमाण बहुत लघु है, फिर भी उनमे यथाप्रसङ्ग अन्य बातो का उल्लेख भी उपलब्ध होता है।

इसमें पाटलिपुत्र के राजा चन्द्रगुप्त और उसके महामन्त्री चाणक्य का उल्लेख है। पाटलिपुत्र मे जो भयकर दुर्भिक्ष पडा था, उसका भी उल्लेख है। आचार्य सुस्थित और उसके शिष्यो के सम्बन्ध मे भी वणन मिलता है। इस सम्बन्ध मे एक कथानक भी दिया गया है।

ओघ-निर्युक्ति-भाष्य

पिण्ड निर्युक्ति की भाँति ओघ निर्युक्ति मे भी साधु जीवन के आचार-विचार का वणन किया गया है। इसमे ३२२ गाथाएँ है। इस पर आचार्य द्रोण ने वृत्ति लिखी है। साधु के आचार के अतिरिक्त इसमे प्रसङ्गवश अन्य वर्णन भी आ जाते हैं।

किसी किसी देश मे वहाँ के लोग प्रात काल साधुओ के दर्शन को अपशकुन मानते थे। साधुओं का अनेक प्रकार से परिहास किया जाता था। इसमे कलिंग देश के काञ्चनपुर नगर मे जो भयकर बाढ आयी थी, उसका भी उल्लेख है। सास्कृतिक दृष्टि से ओघ निर्युक्ति भाष्य बडा ही महत्वपूर्ण माना जाता है। मालवा देश के सम्बन्ध मे उल्लेख आया है, कि वहाँ के लोग साधुओ को बहुत पीडा देते थे। अत भाष्याकर उनसे सतर्क रहने का सकेत करते हैं। इसमे शुभ और अशुभ तिथियो पर भी विचार किया गया है।

दशवैकालिक-भाष्य

दशवैकालिक-सूत्र की गणना मूल सूत्रो मे है। इस पर भी एक छोटा सा भाष्य है, जिसमे कुल ६३ गाथाएँ हैं। इस पर आचार्य हरिभद्र की एक टीका है।

इसमें मूल गुण और उत्तर गुणो का कथन है। प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणो की चर्चा है। जीव की सिद्धि अनेक प्रमाण और तर्क से की है। यह भी बताया है, कि वैदिक और बौद्ध, जीव का क्या स्वरूप मानते हैं।

इसमे साधु के आचार और विचार । भी वर्णन है। प्रसगवश बीच-बीच मे अन्य बातो का भी ल्लेख किया गया है। छोटा होते हुए भी यहभाष्य बडे महत्त्व का है।

उत्तराध्ययन-भाष्य

इसकी गणना भी मूल सूत्र मे है। इस पर शान्ति सूरि ने प्राकृत मे एक विस्तृत टीका लिखी है। इस पर एक लघु भाष्य भी लिखा गया है जिसकी गाथाएँ इसकी निर्युक्ति में मिश्रित हो गई है।

इसमें बोटिक की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थों का स्वरूप बताया गया है। पाँच भेद इस प्रकार से है—पुलाक बकुश कुशील निर्ग्रन्थ और स्नातक। प्रसङ्गवश अन्य भी वर्णन किया गया है जो बहुत सुन्दर है।

उत्तराध्ययन सूत्र पर संस्कृत मे बहुत-सी टीकाएँ लिखी गई है। इन टीकाओं मे कुछ विस्तृत है और कुछ संक्षिप्त है।

आवश्यक-भाष्य

आवश्यक सूत्र मे जैन साधना का बड़ा ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस पर तीन भाष्य लिखे गए है—

लघु-भाष्य

महाभाष्य

विशेषावश्यक-भाष्य

इसमें बताया गया है, कि कालिक श्रुत में चरण करणानुयोग का वर्णन है, ऋषि भाषित मे धर्मकथानुयोग का वर्णन है। दृष्टिवाद मे द्रव्यानुयोग का वर्णन किया है।

भिक्षुओं का और करकण्डु आदि प्रत्येक बुद्धों के जीवन का विस्तार के साथ कथन किया गया है। अस्वाध्याय का वर्णन भी संक्षेप मे किया है। जल्लमित के सम्बन्ध मे कहा गया है कि वह अनुप्रवाद के नैपुणिक वस्तु मे पारंगत था। अन्य बहुत-से विषयों का इसमें वर्णन है।

विशेषावश्यक-भाष्य

आवश्यक-सूत्र पर यह एक विस्तृत विशाल और बृहत्काय महाभाष्य है। जैन ज्ञान का यह एक महाकोष है। आगमों पर जितने भी अन्य भाष्य है उन सब मे यह विशाल भाष्य है। आगमों मे बिखरे तत्त्व ज्ञान को इसमे एकत्रित, सुगठित और तर्क-शैली मे प्रस्तुत किया है। जैन तत्त्व ज्ञान की परिभाषाओं को स्थिर किया है। इसकी रचना के उत्तर काल मे जितने भी आगम के व्याख्याकार आचार्य हुए है, उन सबने अपनी व्याख्या का आधार इसी महाभाष्य को बनाया है। आगम मे कोई ऐसा तत्त्व नहीं है, जिसकी आचार्य ने इसमे विस्तार से व्याख्या अथवा चर्चा न की हो। आचार की चर्चा इसमे भले ही संक्षेप में हो परन्तु विचार की चर्चा तो विस्तार के साथ मे की है।

विशेषावश्यक-भाष्य का प्रत्येक प्रकरण और प्रत्येक अध्याय अपने आप मे एक-एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही है। भाष्यकार ने पाँच ज्ञानों की विचारणा इतने विस्तार से की है, कि बाद के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों

म उसी को ग्रहण किया, नया कुछ भी लिख नही सके। आचार्य ने पुरातन शैली से ही ज्ञान का वर्णन किया, उसे तर्क-शैली से प्रस्तुत करके दार्शनिक-युग की समग्र प्रमाण विवेचना को आत्मसात् कर लिया। इसकी ज्ञानवाद की विवेचना का गम्भीर अध्ययन करने के बाद मे अध्येता के मुख से एक ही बात निकलती है, कि 'जो कुछ यहाँ पर है, वही अन्यत्र भी है, और जो कुछ यहाँ पर नही है, वह अन्यत्र कही पर भी दृष्टि-गोचर नही होता। ज्ञानवाद की गम्भीरता का इसमे यथार्थ दर्शन उपलब्ध होता है।"

इसका गणधरवाद भी बहुत विशाल और गम्भीर है। समग्र भारतीय दर्शन का इसमे निचोड आ जाता है। एक प्रकार से गणधरवाद भारतीय दर्शन का प्रतिनिधि ग्रन्थ कहा जा सकता है। दर्शन-शास्त्र का ऐसा कोई विचार नही, जो इसमें न आ गया हो। जीव और आत्मा, बन्ध और मोक्ष लोक और परलोक, पुण्य और पाप, स्वर्ग और नरक तथा भूतवाद और अध्यात्मवाद, सब पर आचार्य ने अधिकार पूर्वक लिखा है। ग्यारह गणधरो का तत्वज्ञान इसमे समाहित हो जाता है। पूर्वपक्ष गणधरो का और उत्तरपक्ष महाश्रमण भगवान् महावीर का। अपनी शका का समाधान मिल जाने पर सब गणधर भगवान् का शिष्यत्व स्वीकार कर लेते हैं। इसी आधार पर यह गणधरवाद कहा जाता है।

इसका निन्हववाद भी कम विशाल नही है। इसमे निन्हवो के विचार भेद को लेकर बहुत विस्तार से लिखा गया है। अत यह भी ज्ञानवाद और गणधरवाद की भाँति एक स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा जा सकता है। निन्हवो की चर्चा बहुत ही रोचक और सुन्दर है। तर्क और प्रतितर्कों का दगल देखने योग्य है। आचाय की शैली इतनी प्रशस्त और सुबोध्य है, कि विषय गम्भीर होने पर भी अध्येता उसके अध्ययन से ऊबता नही है। जैन सस्कृति मे भी समय-समय पर कैसे और कितने विचार भेद होते रहे हैं। इस बात का प्रमाण इस निन्हववाद के अध्ययन से मिल जाता है। इससे मिथ्या आग्रह और सम्यग् आग्रह का पता लगता है। इसमे एकान्त और अनेकान्त की चर्चा बहुत मधुर है।

सामायिक का स्वरूप बहुत विस्तार से और निक्षेप पद्धति से बताया गया है। वस्तुत विशेषावश्यक भाष्य आवश्यक के प्रथम सामायिक आवश्यक पर ही लिखा गया है। एक में ही आचार्य ने सब कुछ कह दिया, फिर आगे कुछ कहना ही शेष नही रहा।

नमस्कार प्रकरण भी बहुत लम्बा है। नमस्कार क्या है? उसका फल क्या है? आदि पर गम्भीर विचार किया गया है। इसमे भी निक्षेप पद्धति से कथन है।

निक्षेपो की विचारणा लम्बी और बहुविध है। निक्षेप की परिभाषा देकर, फिर उसके भेद बताकर अन्त मे उसे घटाने की विधि अथवा पद्धति का वर्णन है। मुख्य रूप मे निक्षेप के चार भेद होते हैं।

नयाधिकार मे नयो का विस्तार मे कथन किया गया है। नयो का स्वरूप, नयो के भेद और नयो की योजना पद्धति का कथन किया गया है। मूल मे दो नय और फिर उसके सात भेदो का वर्णन किया है। प्रसगवश अन्य भी बहुत से विषयो की चर्चा विस्तार के साथ की है।

विशेषावश्यक-भाष्य पर अनेक समर्थ आचार्यों ने टीका की है, परन्तु उन में तीन टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं —

१ स्वयं ग्रन्थकार की स्वोपज्ञवृत्ति
२ कोट्याचार्य की विस्तृत टीका
३ आचार्य मलधारी हेमचन्द्र कृत विशाल टीका

आगम ग्रन्थों में ही नहीं, समग्र जैन तत्त्व-ज्ञान के ग्रन्थों में इस भाष्य का अपना एक विशिष्ट स्थान रहा है और भविष्य में भी रहेगा। यह भाष्य वस्तुतः महाभाष्य है। आगमों के रहस्य को समझने के लिए इसका अध्ययन परम आवश्यक है। आगम-गत तत्त्ववाद का इसमें बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया गया है।

चूर्णि-परिचय

निर्युक्ति और भाष्य की भांति चूर्णि भी आगमों की व्याख्या है। परन्तु यह पद्य में न होकर गद्य में होती है। केवल प्राकृत में न होकर प्राकृत और संस्कृत दोनों में होती है। चूर्णियों की भाषा सरल और सुबोध्य होती है।

चूर्णियों का रचना समय लगभग सातवीं-आठवीं शती है। चूर्णिकारों में जिनदास महत्तर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका समय विक्रम की सातवीं शती माना जाता है। इन्होंने बहुत-से आगमों पर चूर्णियाँ लिखी हैं। परन्तु इनकी निशीथ चूर्णि तो बड़े विस्तार में है। चूर्णिकारों में सिद्धसेन सूरि, प्रलम्ब सूरि और अगस्त्यसिंह सूरि का नाम भी उल्लेखनीय है। निशीथ और आवश्यक की चूर्णि को विशेष चूर्णि कहा गया है।

प्रसिद्ध और उपलब्ध चूर्णियाँ इस प्रकार हैं —

१	आवश्यक	१	जीवाभिगम
२	आचारांग	११	निशीथ
३	सूत्रकृतांग	१२	महानिशीथ
४	दशवैकालिक	१३	बृहत्कल्प
५	उत्तराध्ययन	१४	व्यवहार
६	नन्दी	१५	दशाश्रुत स्कन्ध
७	अनुयोगद्वार	१६	जीतकल्प
	व्याख्या-प्रज्ञप्ति	१७	पञ्चकल्प
८	जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति	१८	ओघ

इन चूर्णियो मे धर्म, दर्शन, सस्कृति, समाज और इतिहास की विपुल सामग्री उपलब्ध होती है। इनके अध्ययन से जैन आचार्यों के व्यापक ज्ञान का पता लगता है।

आवश्यक–चूर्णि

अन्य चूर्णियो की भाति इसमे केवल शब्दो के अर्थ का ही कथन नहीं है। विषय और विवेचन की दृष्टि से यह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन गया है। इसमे विविध विषयो का विस्तार से उपन्यास किया है। भापा इसकी प्राञ्जल है।

इसमे पाँच ज्ञानों का विवेचन है। गणधरो का सम्वाद है। ऋपभदेव के जन्म से लेकर निर्वाण तक की घटनाओ का वर्णन क्रम-बद्ध है। कलाओ का कथन है। शिल्प-शास्त्र के तत्वो का प्रतिपादन है। पाँच प्रकार के शिल्प-कारो का उल्लेख है। पाँच शिल्पकार हैं—कुम्भकार, चित्रकार, वस्त्रकार, कर्मकार और काश्यप। अग्नि के आविष्कार का उल्लेख है।

इसमे यह भी कथन है कि ऋपभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को लेखनकला की, सुन्दरी को गणित की और अपने पुत्र भरत को चित्रकला और राजनीति की शिक्षा दी। भरत की दिग्विजय और उसके राज्याभिषेक का विस्तार के साथ मे वर्णन किया गया है।

महावीर के जन्म और जन्मोत्सव का रोचक वर्णन है। महावीर की दीक्षा, साधना, उपसर्ग और कैवल्य आदि का वणन किया गया है। पार्श्व-परम्परा के अनेक सन्तो का परिचय दिया है।

मखलिपुत्र गोशालक महावीर को नालन्दा मे मिला। महावीर ने लाढ, वज्रभूमि और शुभ्र भूमि मे जो उपसग सहन किए थे, उनका उल्लेख है। यह वर्णन बहुत ही द्रावक है। प्रसग-वश जमालि, आर्यरक्षित, तिष्यगुप्त, वज्र स्वामी और वज्रसेन आदि का वर्णन किया गया है, जो इतिहास की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। दशपुर, दशाण भद्र और मथुरा का भी उल्लेख है।

चेलना के अपहरण की घटना है। कोणिक और सेचनक हाथी की उत्पत्ति कथा दी है। कोणिक का चेटक के साथ युद्ध हुआ था। मगध की प्रसिद्ध गणिका मागधी का और कोणिक ने उसकी कैसे सहायता ली?

राजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार के जीवन की अनेक घटनाओ का वणन भी इसमे मिलता है। उसकी बौद्धिक सूझ की अनेक कथाओ का उल्लेख है। कोणिक के पुत्र उदायी ने पाटलिपुत्र कैसे बसाया? इसका वणन है।

यथाप्रसग नन्द राजा का वर्णन, शकटाल और वररुचि की घटना, स्थूलभद्र का ससार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करना और कोशा को प्रतिबोध करना आदि का वर्णन इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है।

आचारांग-चूर्णि

इसमें साधु के आचार का वर्णन है। प्रसंगवश अन्य भी बहुत-से वर्णन आ जाते हैं। चूर्णि संस्कृत और प्राकृत का मिश्रित रूप होता है। भाषा सरल और सुबोध्य होती है। बीच-बीच में विषय को स्पष्ट करने के लिए कथानक भी आ जाते हैं। कथानकों में लोक-कथाएँ बहुत हैं। यहाँ पर एक लोक-कथा का नमूना देखिए —

"एगम्मि गामे एक्को कोडुंबिओ धणमंतो बहुपुत्तो य। सो वुड्ढी भूतो पुत्तेसु भरं संकामति।

"एक्कम्मि गामे कुलवधू। तस्स भत्तारस्स एगत्त चिट्ठे भोयणं निज्जमति, सो अउलट्ठीए महिलाए सम्मुहति। अन्नया तस्स चिट्ठे वलहो मतो।

उक्त दोनों कथाओं के अध्ययन से अध्येता भली-भाँति समझ सकता है, कि चूर्णि की भाषा कितनी सरल और शैली कितनी रोचक है।

चूर्णिकार शब्दों का अर्थ भी बहुत सरल भाषा में समझाता है। यहाँ पर 'मूक कुब्ज और बधिर' शब्द की व्याख्या देखिए —

"बहिरो न सुणेति मूओ। खुज्जो वामणो। वडभेति जस्स वडभं पिट्ठीए निग्गतं।

सूत्रकृतांग-चूर्णि

इसमें दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या की है। लोक-कथाओं का उल्लेख इसमें भी बहुत है। प्रसंगवश विभिन्न देशों की रीति-नीतियों का वर्णन आता है। जैसे कोसल देश में यह प्रथा थी कि यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति की हत्या करदे, तो वह उसी प्रकार निन्दा का पात्र होता था जैसे ब्राह्मण की घात करने वाला। ताम्रलिप्ति नगरी में डाँस बहुत होते थे। मल्ल जाति के लोगों में यह परम्परा थी कि यदि कोई अनाथ मल्ल मर जाए, तो सब मिल कर उसका संस्कार किया करते थे। इससे सहयोग की भावना अभिव्यक्त होती है।

इसमें आगम प्रसिद्ध आर्द्रकुमार की जीवन घटना का वर्णन है। वह अनार्य देश का रहने वाला था। फिर भी आर्य देश के रहने वाले अभयकुमार के साथ उसकी मित्रता थी। इससे प्रकट है कि प्रेम भाव में आर्य और अनार्य-भाव बाधक नहीं होता है।

दशवैकालिक-चूर्णि

इसमें साधु के आचार का वर्णन है। जिनदास महत्तर की यह प्रसिद्ध कृति एवं रचना है। व्याख्या, भाषा और शैली की दृष्टि से यह चूर्णि बहुत सुन्दर है। इसमें प्राकृत भाषा के शब्दों की व्युत्पत्ति भी

रोचक ढग म दी है। उदाहरण के लिए "द्रुम, रुक्ख और पादप" शब्दो की व्युत्पत्ति और व्याख्या का नमूना देखिए —

"दुमा नाम भूमीए, आगासे य दोसु माया, दुमा। रुत्ति पुहवी, खत्ति आगास, तेसु दोसु वि जहा ठिया, तेण रुक्खा। पादेहिं पिवन्तीति पादपा। पादा मूल भण्णति।"

इसमे कही-कही पर कथोपकथन की शैली भी उपलब्ध होती है। इसके पढ़ने से एकाकी और नाटको जैसा आनन्द मिलता है। देखिए, कितना सुन्दर सम्वाद है —

"कि मच्छे मारेसि !
न सिक्केमि पातु।
अरे, तुम मज्ज पियसि !"

इस चर्णि मे भी वहुत-सी लोक-कथाओ का, लोक परम्पराओ का वर्णन यथाप्रसग दिया गया है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी चूर्णियो का अध्ययन वहुत महत्त्व रखता है।

उत्तराध्ययन-चूर्णि

यह चर्णि भी जिनदास महत्तर की एक सुन्दर कृति है। यह वहुत विस्तृत नही है। सस्कृत और प्राकृत मिश्रित एक लोक-कथा का नमूना देखिए —

"एगो पसुवालो प्रतिदिन मध्याह्न-गते रवौ अजासु महान्यग्रोध–तरु–समाश्रितासु तत्थुणओ निवन्नो वेणुविदलेण अजोद्गीर्ण कोलास्थिभि तस्य वटस्य छिद्रीकुर्वन् तिष्ठति।"

इसमे काश्यप शब्द की व्युत्पत्ति देखने के योग्य है। देखिए, क्या व्युत्पत्ति है —

"काश=उच्छु, तस्य विकार, कास्य, रस, स यस्य पान, काश्यप=उसभसामी, तस्य जोगा जे जाता ते कासवा, वद्धमाणो सामी कासवो।

प्रसगवश इस चूर्णि मे तत्त्व-चर्चा और लोक-चर्चा भी उपलब्ध होनी है।

नन्दी-चूर्णि

इसमे पाँच ज्ञानो का वर्णन है। इस चूर्णि मे माथुरी वाचना का उल्लेख मिलता है। द्वादश वर्ष का अकाल पड़ने पर समस्त साधु सघ विखर गया और वाद मे एकत्रित हुआ था। कहा जाता है, कि आचार्य स्कन्दिल ने मथुरा मे आकर साधु-सघ को अनुयोग की शिक्षा दी थी। प्रसगवश इसमे अन्य भी वहुत-सी वातों का उल्लेख है, जो इतिहास की दृष्टि से वहुत उपयोगी और महत्व-पूर्ण हैं। लोक-कथाएँ और लोक-रूपक बहुत हैं।

अनुयोगद्वार-चूर्णि

यह चूर्णि बहुत महत्त्वपूर्ण है। अनुयोगद्वार में आगत तत्त्वों का इसमें सुन्दर विवेचन किया गया है। भाव भाषा और शैली की दृष्टि से भी यह कृति सुन्दर है। यथाप्रसंग अन्य बहुत से विषय इसमें आए हुए हैं। जैसे द्रव्य किसे कहते हैं? शब्दों की परिभाषा क्या है? सेनापति और सार्थवाहों का वर्णन। राजा और प्रजा, आसन और धन, रस और मान आदि शब्दों के अर्थ किए गए हैं।

व्याख्या-प्रज्ञप्ति-चूर्णि

व्याख्या-प्रज्ञप्ति को भगवती भी कहते हैं। भगवती सूत्र वर्तमान में उपलब्ध समस्त सूत्रों में सबसे बड़ा और विस्तृत है। परन्तु इस की चूर्णि बहुत छोटी है। इसमें शब्दों की व्युत्पत्ति बहुत सुन्दर की है।

जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति चूर्णि

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति उपांग सूत्रों में है। इसमें जम्बूद्वीप का विस्तार से वर्णन है। इसकी चूर्णि भी बहुत छोटी है। यथाप्रसंग अन्य विषय भी संक्षेप में वर्णित हैं।

जीवाभिगम-चूर्णि

जीवाभिगम की गणना उपांगों में की जाती है। इसमें जीव और अजीव का विस्तार से वर्णन है। इसमें गणधर गौतम और भगवान् महावीर के प्रश्न और उत्तर के रूप में जीव और अजीव के भेद और प्रभेदों का विस्तार के साथ में वर्णन किया गया है। इस पर मलयगिरि की टीका है। हरिभद्र और देवसूरि की लघु वृत्तियाँ भी हैं। इस पर एक छोटी-सी अवचूर्णि भी थी।

दशाश्रुत स्कन्ध-चूर्णि

दशाश्रुत स्कन्ध की गणना छेद सूत्रों में है। भद्रबाहु इसके प्रणेता हैं। कहा जाता है कि दृष्टिवाद के प्रत्याख्यान नाम के प्राभृत से इसका उद्धार किया गया। इस पर एक लघुचूर्णि है। इसमें दशा कल्प और व्यवहार को प्रत्याख्यान पूर्व से उद्धृत कहा गया है। आचार्य कालक की कथा का इसमें उल्लेख है। प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन का वर्णन भी इसमें आता है। सिद्धसेन का उल्लेख है। गोशालक का वर्णन भी आता है। तापसों का वर्णन आता है।

ओघ चूर्णि

इसकी परिगणना मूल सूत्रों में की जाती है। ओघ शब्द का अर्थ है—सामान्य अथवा साधारण। यह सामान्य समाचारी को लेकर लिखी गई है। ओघ पर एक लघु चूर्णि है। इसके अतिरिक्त आचार्य

मलयगिरि ने ओघ की निर्युक्ति पर वृत्ति की रचना की है। ओघ का विषय है, साधु जीवन की समाचारी। सयम का परिपालन कैसे करना चाहिए। असयम से सयम की रक्षा कैसे की जाए।

निशीथ-चूर्णि

चूर्णियों मे सबसे बडी चूर्णियाँ दो हैं—आवश्यक-चूर्णि-और निशीथ-चूर्णि। अत इन्हे विशेष चूर्णि कहा जाता है। निशीथ की चूर्णि आवश्यक चूर्णि से भी अधिक विस्तृत है, क्योंकि यह मूल पर, निर्युक्ति पर और भाष्य पर, तीनों पर है। निशीथ निर्युक्ति पर, निशीथ भाष्य पर जो प्राकृत गद्य मे व्याख्या है, उसका नाम विशेष चूर्णि है। चूर्णिकार स्वय कहता है—

"पुव्वायरिय - कय चिय अह पि
त चेव उ विसेसा।"

जिस प्रकार जिनभद्र क्षमाश्रमण का भाष्य आवश्यक की विशेष बातो का विवरण करता है, अत वह विशेषावश्यक भाष्य कहा जाता है, उसी प्रकार निशीथ-भाष्य की विशेष बातो का विवरण करने वाली चूर्णि को भी विशेष चूर्णि कहा जाता है। इसका अर्थ यह है, कि इसके पूर्व भी इस पर अन्य विवरण अथवा वृत्ति लिखी जा चुकी है।

चूर्णि को प्राकृत की गद्य व्याख्या कहने का अभिप्राय इतना ही है, कि इस मे प्राकृत अधिक और सस्कृत अल्प है। निशीथ चूर्णि की भाषा बहुत मधुर, सुबोध्य और सरल है। इसकी शैली बहुत सुन्दर है। भावो की अभिव्यक्ति मे चूर्णिकार बहुत ही सिद्धहस्त हैं। गम्भीर विषय को भी वह सरल भाषा में अभिव्यक्त कर जाता है। निशीथ चूर्णि स्वय अपने आप में एक विशाल-काय स्वतन्त्र ग्रन्थ जैसा ही प्रतीत होता है। क्योकि इसमे सभी विषयो की व्याख्या विस्तार से देने का प्रयत्न किया है।

यह बात असदिग्ध है, कि जिनदास महत्तर ही इस चूर्णि के प्रणेता है। आचार्य ने स्वय इसमें अपना, अपने परिवार का और जन्म भूमि का भी उल्लेख किया है। इससे सिद्ध होता है, कि निशीथ चूर्णि की रचना आचार्य जिनदास महत्तर ने की है।

निशीथ चूर्णि मे बडे विस्तार के साथ मे साधु जीवन के आचार का वर्णन किया गया है, उत्सर्ग और अपवाद का तो इसमे बहुत ही अधिक विस्तार किया है। यह विषय जितना गम्भीर है, आचार्य ने उसे उतने ही अधिक विस्तार से उठाया है और बडी गम्भीरता के साथ उसे पूरा भी किया है। उत्सर्ग और अपवाद की परिभाषा देकर, किस प्रसग पर अपवाद का सेवन किया जाता है, यह भी बताया है। निशीथ चूर्णि की प्राकृत भाषा कितनी प्राञ्जल, कितनी ओजपूर्ण, कितनी मधुर और कितनी स्पष्ट है, इसका एक नमूना यह है —

गोशालक अनुयायी। शाक्य का अर्थ है—बौद्ध भिक्षु। तापस और गैरिक—इनका भी कभी सम्प्रदाय रहा होगा।

दृष्टिवाद को उत्तमश्रुत बताते हुए कहा है, कि द्रव्यानुयोग-चरणानुयोग, धर्मकथानुयोग और गणितानुयोग का वर्णन होने से यह श्रुत सर्वोत्तम है। इसके अतिरिक्त इस मे जोणि-पाहुड का भी उल्लेख है। इसमे मन्त्र-विद्या का वर्णन है। तरगवती, मलयवती, धूर्ताख्यान और वसुदेव चरित्र आदि कथा का उल्लेख है।

महानिशीथ-चूर्णि

महानिशीथ की गणना छेदसूत्रो मे की जाती है। यह उपलब्ध नही था। इसमे छह अध्ययन और दो चूलाएँ थी। कहा जाता है, कि बाद मे हरिभद्र सूरि ने इसका अनुसधान किया। वृद्धवादी, सिद्धसेन और देवगुप्त आदि आचार्यों ने इसे मान्य किया। इस पर भी किसी ने चूर्णि लिखी थी।

बृहत्कल्प-चूर्णि

कल्प अथवा बृहत्कल्प को कल्पाध्ययन भी कहा गया है। साधु-जीवन का यह एक प्रसिद्ध आचार-शास्त्र है। कल्प शब्द का अर्थ भी आचार किया जाता है। इसका विस्तार बहुत है। इस पर निर्युक्ति, भाष्य और टीकाएँ लिखी गई हैं। इस पर एक चूर्णि भी लिखी गई थी।

व्यवहार-चूर्णि

व्यवहार चूर्णि को द्वादशाग का नवनीत अथवा सार कहा गया है। निशीथ और कल्प के समान यह भी छेदसूत्र है। इसमे भी साधु के आचार का वर्णन है। इस पर निर्युक्ति, भाष्य और टीकाएँ हैं। व्यवहार पर एक चूर्णि भी लिखी गई थी।

जीतकल्प-चूर्णि

जीतकल्प सूत्र की गणना छेदो मे की जाती है। इसमे साधुओ के पाँच व्यवहारो का विवेचन किया गया है। विशेषत दश प्रकार के प्रायश्चित्तो का विस्तार के साथ वर्णन किया है। इसके प्रणेता जिनभद्र क्षमाश्रमण हैं। स्वय ने इस पर भाष्य भी लिखा है। आचार्य सिद्धसेन ने इस पर एक चूर्णि लिखी है। उस पर चन्द्रसूरि ने विषम पद टीका लिखी है। इसकी चूर्णि मे सिद्धसेन ने दश प्रकार के प्रायश्चित्तों का बहुत अच्छा विवेचन किया है। चूर्णि की भाषा सुबोध्य और मधुर है।

पञ्चकल्प-चूर्णि

पञ्चकल्प की गणना भी छेद सूत्रो मे की जाती है। कहा जाता है, कि बृहत्कल्प भाष्य का ही

यह एक भाग है। इसमें पाँच प्रकार के वस्त्रों का अर्थात् आचारों का वर्णन है। इस पर एक भाष्य भी लिखा गया है जिसके प्रणेता आचार्य संघदास गणि हैं। इस पर निर्युक्ति भी है। एक चूर्णि भी इस पर लिखी गई है।

चूर्णियों में अभी तक बहुत-सी अनुपलब्ध हैं, कुछ अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी हैं, कुछ का प्रकाशन हो रहा है। निशीथ चूर्णि का प्रकाशन अभी सन्मति ज्ञानपीठ आगरा से हुआ है जिसका सम्पादन उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी महाराज ने बड़े श्रम से किया है। इसका प्रकाशन चार भागों में हुआ है जिसमें मूल सूत्र उसकी निर्युक्ति उसका भाष्य और उसकी विशेष चूर्णि भी है। व्यवहार सूत्र की चूर्णि का प्रकाशन भी होने वाला है। श्री पुण्यविजय जी इसका प्रकाशन कर रहे हैं। भण्डारों के अनुसन्धान से भी बहुत-सा प्राचीन साहित्य प्रकट हो रहा है।

टीका-परिचय

प्राकृत-युग में मूल आगम निर्युक्ति और भाष्यों का गुम्फन हुआ। चूर्णि-युग में प्रधानता प्राकृत की होने पर भी उसमें संस्कृत का प्रवेश हो चुका था। टीकाएँ संस्कृत-युग की कृतियाँ हैं। आगम-साहित्य में चूर्णि-युग के बाद में संस्कृत टीकाओं का युग आता। टीका के अर्थ में इतने शब्दों का प्रयोग किया गया है—निर्युक्ति भाष्य चूर्णि टीका विवृत्ति वृत्ति विवरण विवेचना अवचूरि, अवचूर्णि दीपिका व्याख्या पञ्जिका विभाषा और छाया।

संस्कृत टीका-युग जैन-साहित्य में एक स्वर्णिम-युग कहा जा सकता है। इस युग में केवल आगमों पर ही टीकाएँ नहीं लिखी गईं अपितु आगमों की निर्युक्तियों पर और भाष्यों पर भी टीकाएँ लिखी गईं, बल्कि टीकाओं पर भी टीकाएँ हुईं। इस दृष्टि से टीका-युग साहित्य की समृद्धि का युग कहा जा सकता है।

मूल आगमों के निर्युक्ति-युग में केवल आगमों के शब्दों की व्याख्या अथवा व्युत्पत्ति की जाती थी। आगे भाष्य-युग में भावों का विवेचन आरम्भ हुआ। वह बड़े विस्तार के साथ में किया गया। चूर्णि-युग में कुछ भावों को लोक-कथाओं के आधार पर समझाने की कला का प्रयोग किया गया। परन्तु टीका-युग में आगमों की दार्शनिक व्याख्या का युग प्रारम्भ होता है। अतः संस्कृत टीकाओं में दार्शनिक विश्लेषण और विवेचन अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इस युग में संक्षिप्त और विस्तृत सभी प्रकार की टीकाएँ लिखी गईं। अतः विकास की दृष्टि से टीका-युग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

प्रसिद्ध टीकाकार

जैन-साहित्य में चूर्णि-युग के बाद में संस्कृत टीकाओं का युग आता। संस्कृत टीकाकारों में आचार्य हरिभद्र का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने प्राकृत चूर्णियों के आधार से टीका की। आगमों के अतिरिक्त

अन्य ग्रन्थों पर भी इनकी टीकाएँ उपलब्ध हैं। आपकी विपुल ग्रन्थ-राशि सस्कृत और प्राकृत दोनो भापाओं मे है। दोनो भापाओ पर आपका असाधारण अधिकार था।

हरिभद्र के वारे मे आचार्य शीलाक ने सस्कृत टीकाएँ लिखी। आचाराग और सूत्रकृताग पर आपकी विस्तृत और महत्त्वपूर्ण टीकाएँ हैं, जिनमे दार्शनिकता की प्रधानता है। आपने सूत्रकृताग-टीका म भूतवाद और ब्रह्मवाद की वहुत ही गम्भीर समीक्षा की है। भापा प्राञ्जल और भावो की गम्भीरता है।

शान्तिसूरि ने उत्तराध्ययन पर अत्यन्त विस्तृत टीका लिखी है। यह प्राकृत और सस्कृत दोनो मे है। परन्तु प्राकृत की प्रधानता है। अत इसका नाम पाइय टीका प्रसिद्ध है। इसमे धर्म और दर्शन का अतिसूक्ष्म विवेचन हुआ है।

मलधारी हेमचन्द्र भी प्रसिद्ध टीकाकार है। इन्होने विशेपावश्यक भाष्य पर विस्तृत सस्कृत वृत्ति लिखी है। यह एक महत्त्वपूर्ण और गम्भीर टीका है। विशेषावश्यक भाष्य पर कोटयाचार्य की टीका भी वहुत प्रसिद्ध है।

सस्कृत टीकाकारो मे सवसे विशिष्ट स्थान आचाय मलयगिरि का है। मलयगिरि वस्तुत टीका-साहित्य मे महागिरि के तुल्य है। इनकी टीकाओ मे भाव गम्भीर, भापा प्राञ्जल और शैली प्रौढ है। जिस किसी भी आगम पर अथवा ग्रन्थ पर टीका की, उसमे वह तन्मय हो गए। जिस प्रकार वैदिक परम्परा मे वाचस्पति मिश्र ने पड्दर्शनो पर प्राञ्जल भापा मे और प्रौढ शैली मे विशद टीकाएँ लिख-कर आदर्श उपस्थित किया है, ठीक वैसा ही आदर्श जैन-साहित्य मे आचार्य मलयगिरि ने किया है। दशन-शास्त्र के तो आप विशाल और विराट विद्वान थे। विभिन्न दर्शन-शास्त्रो का जैसा और जितना गम्भीर विवेचन एव विश्लेषण आपकी टीकाओ मे हो सका, वैसा और उतना अन्यत्र कही पर भी न मिल सकेगा। आचार्य मलयगिरि अपने युग के महान् तत्त्व-चिन्तक, महान् टीकाकार और महान व्याख्याता थे। आगमो के गुरु-गम्भीर भावो को तक-पूर्ण शैली मे उपस्थित करने की आप मे अद्भुत क्षमता, योग्यता और कला थी। अत आचाय मलयगिरि एक सफल टीकाकार थे।

आगमो के टीकाकारो मे अभयदेव सूरि भी एक सुप्रसिद्ध टीकाकार हैं। अभय देव सूरि को नवाङ्गी वृत्तिकार कहा जाता है। अभयदेव का स्थान जैन-साहित्य मे वडा ही गौरवपूर्ण है, जिन्होंने नव अङ्गो पर टीका लिखकर, विलुप्त होते हुए श्रुत की सरक्षा करके, एक महान् कार्य किया था। इनकी टीकाएँ अधिक विस्तृत नही हैं, मूल से अधिक निकट हैं। परन्तु वहुत से स्थलो पर गहन-गम्भीर विचा-रणा भी उपलव्ध हो जाती है। आचाय ने नव-अङ्ग सूत्रो पर टीका लिखकर, वस्तुत महती श्रुत-सेवा की है।

समस्त टीकाओ का विस्तृत परिचय देना, यहाँ सम्भव नही है। क्योकि यह विपय वहुत विस्तृत

यह एक भाग है। इसमें पाँच प्रकार के कल्पों का अर्थात् आचारों का वर्णन है। इस पर एक भाष्य भी लिखा गया है जिसके प्रणेता आचार्य संघदास गणि हैं। इस पर नियुक्ति भी है। एक चूर्णि भी इस पर लिखी गई है।

चूर्णियों में अभी तक बहुत-सी अनुपलब्ध हैं कुछ अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकी हैं कुछ का प्रकाशन हो रहा है। निशीथ चूर्णि का प्रकाशन अभी सन्मति ज्ञानपीठ आगरा से हुआ है जिसका सम्पादन उपाध्याय श्री अमरचन्द जी महाराज ने बड़े श्रम से किया है। इसका प्रकाशन चार भागों में हुआ है जिसमें मूल सूत्र उसकी नियुक्ति उसका भाष्य और उसकी विशेष चूर्णि भी है। अगस्त्य सिंह सूरी की चूर्णि का प्रकाशन भी होने जा रहा है। श्री पुण्यविजय जी इसका प्रकाशन कर रहे हैं। भण्डारों के अनुसन्धान से भी बहुत-सा प्राचीन साहित्य प्रकट हो रहा है।

टीका-परिचय

प्राकृत-युग में मूल आगम नियुक्ति और भाष्यों का गुम्फन हुआ। चूर्णि-युग में प्रधानता प्राकृत की होने पर भी उसमें संस्कृत का प्रवेश हो चुका था। टीकाएँ संस्कृत-युग की कृतियाँ हैं। आगम-साहित्य में चूर्णि-युग के बाद में संस्कृत टीकाओं का युग आया। टीका के अर्थ में इतने शब्दों का प्रयोग होता रहा है—नियुक्ति, भाष्य चूर्णि टीका विवृत्ति वृत्ति विवरण विवेचना अवचूरि, अवचूर्णि दीपिका व्याख्या पञ्जिका विभाषा और छाया।

संस्कृत टीका-युग जैन-साहित्य में एक स्वर्णिम-युग कहा जा सकता है। इस युग में केवल आगमों पर ही टीकाएँ नहीं लिखी गईं अपितु आगमों की नियुक्तियों पर और भाष्यों पर भी टीकाएँ लिखी गईं बल्कि टीकाओं पर भी टीकाएँ हुईं। इस दृष्टि से टीका-युग साहित्य की समृद्धि का युग कहा जा सकता है।

मूल आगमों के नियुक्ति-युग में केवल आगमों के शब्दों की व्याख्या अथवा व्युत्पत्ति हो पाई थी। आगे भाष्य-युग में भावों का विवेचन प्रारम्भ हुआ। वह भी विस्तार के साथ में किया गया। चूर्णि-युग में गूढ़-भावों को लोक-कथाओं के आधार पर समझाने की कला का प्रयोग किया गया। परन्तु टीका-युग में आगमों की दार्शनिक व्याख्या का युग प्रारम्भ होता है। अतः संस्कृत टीकाओं में दार्शनिक विश्लेषण और विवेचन अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इस युग में संक्षिप्त और विस्तृत सभी प्रकार की टीकाएँ लिखी गईं। अतः विकास की दृष्टि से टीका-युग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

प्रसिद्ध टीकाकार

जैन-साहित्य में चूर्णि-युग के बाद में संस्कृत टीकाओं का युग आया। संस्कृत टीकाकारों में आचार्य हरिभद्र का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने प्राकृत चूर्णियों के आधार से टीका की। आगमों के अतिरिक्त

कारा मे दो का नाम विशेप प्रसिद्ध है। एक पार्श्वचन्द्र जी, जिनको पायचन्द सूरि भी कहा जाता है, यह मन्दिर मार्गी परम्परा के थे और दूसरे थे, धर्मसिंह जी महाराज। यह स्थानक वासी परम्परा के प्रसिद्ध सन्त थे। धर्मसिंह जी महाराज ने सताईस सूत्रो पर टव्वे लिखे थे। टव्बे वहुत सुन्दर और स्पष्ट लिखे हुए हैं। परन्तु टव्बो का प्रकाशन अभी तक नही हुआ है। अन्य भी कोई टव्वाकार हुआ हो, ऐसा ज्ञात नही हो सका है। तेरापन्थ परम्परा मे भी सम्भवत कोई टव्वाकार हुआ हो ?

टव्वा की उपयोगिता

आज के युग ने वस्तुत टव्वा की उपयोगिता को समाप्त कर दिया है। जव से आगमो का अनुवाद प्रारम्भ हुआ है और उसका प्रचलन वढा है, तव से टव्वा-युग समाप्त हो गया। जो लोग सस्कृत और प्राकृत भापाओ को नही जानते थे, उनके लिए टव्वा का वहुत वडा उपयोग था। विस्तृत टीकाओ का अध्ययन करने की जिनमे क्षमता नही थी, उन लोगो के लिए टव्वा का वहुत महत्व था। अथवा वे छात्र जिन्हें सस्कृत और प्राकृत नही आती थी, टव्वा के द्वारा ही वे आगमो का परिज्ञान करते थे। इसी आधार पर टव्वाओ को वालाववोध भी कहा जाता था। टव्वा और वालाववोध दोनो का अर्थ एक ही है।

अनुवाद-परिचय

आगम-साहित्य के टव्वा-युग के वाद मे अनुवाद-युग आया। अनुवाद का अर्थ हैं—भापान्तर। अनुवाद मे अनुवादक को अपने विचारो को व्यक्त करने का अवसर नही मिलता। इस दृष्टि मे अनुवाद को व्याख्या नही कहा जा सकता। यही वात टव्वा के विपय मे भी है। फिर भी अनुवाद को व्याख्या साहित्य मे परिगणित करना इसलिए अपेक्षित है, कि इससे भी अध्येता को मूल आगम के भावो को समझने का अवसर मिलता है। आगमो का अनुवाद मुख्यरूप मे तीन भापाओ मे उपलब्ध होता है —

१ अंग्रेजी
२ गुजराती
३ हिन्दी

आगमो के अनुवाद का सत्प्रयत्न मूर्तिपूजक समाज की ओर मे और स्थानक वासी समाज की ओर से वहुत पहले प्रारम्भ हो चुका है। अव तेरापन्थ समाज भी इस प्रयत्न मे है। तीनो परम्पराओ की ओर से प्रयत्न होने पर भी अभी तक समस्त आगमो पर सुन्दर अनुवाद उपलब्ध नही हो पाया है। फिर निर्युक्ति, भाप्य, चूर्णि और टीकाओ की तो वात ही अलग है, उस ओर तो अभी प्रयत्न ही नही है।

६	संस्तारक	पुष्कल
७	गच्छाचार	विषम विषम
	गणि-विद्या	
८	देवेन्द्र-स्तव	
९	मरण-समाधि	

यहाँ पर उपलब्ध टीकाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। कुछ पर टीकाएँ उपलब्ध नहीं हैं। कुछ पर विस्तृत टीकाएँ हैं कुछ पर संक्षिप्त टीकाएँ हैं। प्राचीन भण्डारों के अनुसंधान से कुछ टीकाएँ अब प्रकाश में आ रही हैं।

टब्बा-परिचय

टीका-युग की परिसमाप्ति पर टब्बा-युग प्रारम्भ होता है। टब्बा भी एक प्रकार से आगमों पर संक्षिप्त टीका ही है। परन्तु यह संस्कृत-युग न होकर अपभ्रंश-युग है। टब्बा में गुजराती और राजस्थानी भाषा का मिश्रण होता है। सम्भवतः इसका कारण यह हो कि टब्बाकार सन्त प्रायः गुजरात और राजस्थान में ही अधिक विचरण करते थे। टब्बाकारों में पार्श्वचन्द्र और धर्मसिंह जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका समय अठारहवीं सदी माना गया है। टब्बा बहुत ही संक्षिप्त शैली में लिखे गए हैं।

अपभ्रंश-काल

संस्कृत भाषा केवल पण्डितों की भाषा बन चुकी थी। प्राकृत और संस्कृत में से ही अपभ्रंश भाषा की उत्पत्ति हुई। एक युग ऐसा आया जिसमें जैन सन्त प्राकृत और संस्कृत दोनों को भूल कर अपनी कृतियों की रचना अपभ्रंश में ही करने लगे थे। जब निर्युक्ति भाष्य चूर्णि और टीकाओं को समझने वाले विरले रह गए अधिकतर लोग अपने व्यवहार में अपभ्रंश का ही प्रयोग करते थे। लोक-रुचि को देखकर जैन आचार्यों ने अपनी साहित्य रचना का माध्यम अपभ्रंश को ही बना लिया। कथा कहानी जीवन चरित्र और अध्यात्म ग्रन्थ अपभ्रंश में लिखे जाने लगे। क्योंकि जैन आचार्यों ने सदा से ही जन बोली का आदर किया है। जिस भाषा में लोग समझें, उसी भाषा में वे अपनी कृतियाँ लिखने बैठ जाते थे। आगे चलकर आगमों की व्याख्या भी उन्होंने अपभ्रंश में प्रारम्भ कर दी। परन्तु शैली का विस्तार वे नहीं कर सके। संक्षिप्त शैली में और जन बोली में जो आगमों की व्याख्या की गई, उसी को टब्बा कहा गया।

टब्बाकार

टब्बाकार कौन-कौन थे? इस विषय में अधिक ज्ञात अभी तक नहीं हो सका है। परन्तु टब्बा

हिन्दी अनुवाद

हिन्दी अनुवाद के क्षेत्र मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और गौरवमय कार्य पूज्य श्री अमोलक ऋषि जी महाराज ने किया है। बत्तीस आगमो का अनुवाद कर डालना, कोई साधारण बात नही है। और वह भी आज की अपेक्षा उस साधन-हीन युग मे वस्तुत बहुत बडी बात है।

आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज तो आगमो के एक सुप्रसिद्ध अनुवादक और व्याख्याकार थे। स्थानकवासी समाज के आप एक युगान्तरकारी व्यक्ति थे। अनेक आगमो पर आपने विशद व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। आप के द्वारा व्याख्यात उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक-सूत्र, अनुत्तरोपपातिक सूत्र और अनुयोगद्वार सूत्र समाज मे प्रभूत प्रचारित और सर्वप्रिय प्रकाशन हैं। आप की श्रुत सेवा समाज का गौरव है। आपके शिष्य पण्डित ज्ञान मुनि जी ने विपाक-सूत्र का विस्तृत हिन्दी विवेचन प्रस्तुत किया है। आपके द्वारा सम्पादित आगम सर्व-प्रिय हैं।

पूज्य श्री घासीलाल जी महाराज ने बडी महत्वपूर्ण आगम सेवा की है। आपके द्वारा लगभग बीस आगमो का प्रकाशन हो चुका है। आपने उन पर स्वतन्त्र रूप से सस्कृत टीका की है। स्थानकवासी परम्परा मे आप सर्व प्रथम सस्कृत टीकाकार हैं। आपकी श्रुत-सेवा प्रशसनीय है।

मरुधर-धरा के ज्योतिधर आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज की देख-रेख मे सूत्रकृताग की आचार्य शीलाक कृत टीका का हिन्दी अनुवाद हुआ है। इसका प्रकाशन चार भागो मे हुआ है। प्रथम भाग मे मूल और टीका—दोनो का हिन्दी अनुवाद हुआ है। बाद के तीन भागो मे केवल मूल मात्र का हिन्दी अनुवाद किया गया है।

उपाध्याय हस्तीमल जी महाराज ने अनेक आगमो का अनुवाद किया है। दशवैकालिक सूत्र का, नन्दी सूत्र का और प्रश्नव्याकरण का हिन्दी अनुवाद और सम्पादन किया है। बृहत्कल्प सूत्र की एक लघु टीका का भी प्रकाशन किया है।

प्रसिद्ध वक्ता पण्डित सौभाग्यमल जी महाराज ने पूर्व आचाराग-सूत्र का हिन्दी अनुवाद और हिन्दी विवेचन प्रकाशित किया है।

उपाध्याय श्री अमर चन्द्र जी महाराज ने सामायिक-सूत्र और श्रमण-सूत्र पर हिन्दी भाषा मे विस्तृत भाष्य लिखा है। दोनो ग्रन्थ आगम-साहित्य की सेवा मे अपना विशिष्ट स्थान रखते है। भाव भाषा और शैली सभी दृष्टि से उक्त दोनो ग्रन्थ बहुत ही लोक-प्रिय सिद्ध हुए हैं। सन्मति ज्ञान पीठ से अनुत्तरोपपातिक सूत्र का एक बहुत सुन्दर प्रकाशन हुआ है, जिसमे विस्तृत भूमिका, हिन्दी अनुवाद और हिन्दी टिप्पण हैं, जिसका सम्पादन विजय मुनि जी ने किया है।

अंग्रेजी अनुवाद

समस्त आगमों का अंग्रेजी अनुवाद नहीं हो सका है। परन्तु जर्मन विद्वान हरमन जैकोबी ने आचारांग सूत्रकृतांग उत्तराध्ययन और कल्पसूत्र इन चार आगमों का बहुत सुन्दर अनुवाद किया है। आचारांग और कल्पसूत्र के अनुवाद की भूमिका अत्यन्त सुन्दर और उपयोगी है। उससे बहुत-सी प्राचीन मान्यताओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आगमों की महत्ता का परिज्ञान होता है। उक्त विद्वान ने जैन धर्म के अन्य ग्रन्थों का भी अनुवाद और सम्पादन किया है। आचार्य हरिभद्र की समराइच्चकहा का सम्पादन और संशोधन बहुत ही सुन्दर हुआ है। उसकी भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है।

अभ्यंकर ने दशवैकालिक सूत्र का अंग्रेजी अनुवाद बहुत सुन्दर किया है। उपासक दशांग का भी अंग्रेजी अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्तकृत-दशा और अनुत्तरौपपातिक दशा का भी अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। विपाक सूत्र और निरयावलिका सूत्र का भी अंग्रेजी अनुवाद हो चुका है। विदेशी विद्वानों ने आगमों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों का भी अंग्रेजी अनुवाद किया है।

गुजराती अनुवाद

आगम-वाङ्मय के विश्रुत विद्वान महामनीषी पण्डित बेचरदास जी ने अनेक आगमों का संशोधन सम्पादन और अनुवाद किया है। आपने आगमों का गहरा अनुशीलन करके उनका संशोधन और सम्पादन करके बहुत ही बड़ी सेवा की है। भगवती-सूत्र कल्पसूत्र राजप्रश्नीय-सूत्र ज्ञाता-सूत्र और उपासक दशा सूत्र का बहुत सुन्दर अनुवाद ही नहीं किया बल्कि विशेष स्थलों पर महत्त्वपूर्ण टिप्पण भी लिखे हैं और प्रारम्भ की भूमिका।

जीवाभाई पटेल ने अनेक आगमों का सुन्दर शैली में अनुवाद किया है। उन पर महत्त्वपूर्ण टिप्पण भी लिखे हैं। जीवा भाई पटेल के प्रकाशन बड़े ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

दार्शनिक विद्वान पण्डित दलसुख जी मालवणिया ने स्थानांग सूत्र और समवायांग सूत्र का संयुक्त अनुवाद विषयवार वर्गीकरण और महत्त्वपूर्ण टिप्पणों से युक्त अभिनव प्रकाशन किया है जो अपनी शैली का सुन्दर प्रकाशन है।

पण्डित श्री सौभाग्य मुनि जी "सन्त बाल" ने पूर्ण आचारांग का बहुत सुन्दर अनुवाद किया है। विशेष स्थलों पर और विशेष शब्दों पर गम्भीर टिप्पण लिखे हैं और प्रारम्भ में विस्तृत भूमिका भी लिखी है जो तुलनात्मक है। दशवैकालिक सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र का भी आपने अनुवाद और सटिप्पण सम्पादन किया है।

मूर्ति पूजक-परम्परा के अनेक विद्वान मुनिवरों ने अनेक आगमों का सुन्दर अनुवाद किया है। केवल आगमों का ही नहीं मूलक और अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेखनीय अनुवाद किया है।

६ तन्दुल वैचारिक
७ देवेन्द्र स्तव
८ गच्छाचार
९ गणि-विद्या
१० मरण-समाधि,

आगम-युग

आगमो की भाषा अर्ध मागधी है। जैन अनुश्रुति के अनुसार तीर्थङ्कर अर्ध मागधी मे देशना करते है। अत इसको देव-वाणी भी कहा गया है। अर्ध मागधी भाषा को बोलने वाला भाषार्य कहा जाता है। यह भाषा मगध के अर्ध भाग मे बोली जाती थी। इसमे अट्ठारह देशी भाषाओ के लक्षण मिश्रित हैं। महावीर के शिष्य—मगध, मिथिला, काशी, कौशल आदि अनेक देशो के थे। अत आगमो की भाषा मे देश्य शब्दो की प्रचुरता है। चूर्णिकार जिनदास महत्तर की व्याख्या के अनुसार मगधी और देश्य शब्दो का मिश्रण अर्ध मागधी है।

आगम-युग का काल-मान, लगभग विक्रम पूर्व ४७ से प्रारम्भ होकर एक हजार वर्ष तक जाता है। वैसे किसी न किसी रूप मे, आगम-युग की परम्परा वर्तमान मे चल रही है।

जैन परम्परा के अनुसार आगमो के प्रणेता अर्थ-रूप मे तीर्थङ्कर और शब्द-रूप मे गणधर होते हैं। महावीर की वाणी का सार उनके गणधरो ने शब्द-बद्ध किया। फलत अर्थागम के प्रणेता तीर्थङ्कर और शब्दागम के प्रणेता गणधर। परन्तु आगमो का प्रामाण्य गणधरकृत होने से नही, अपितु तीर्थङ्कर वाणी होने से माना जाता है।

आगमो की सख्या कितनी है? इस विषय मे एक मत नही है। आगमो की सख्या के सम्बन्ध मे इस प्रकार की धारणा है—८४, ४५, ३२।

आगमो मे धर्म, दर्शन, सस्कृति, तत्त्व, गणित, ज्योतिष, खगोल, भूगोल और इतिहास—सभी प्रकार के विषय यथाप्रसग आ जाते है। फिर भी मुख्यता, धर्म, दर्शन, सस्कृति, साधना और तत्त्व की रहती है। अध्यात्म-वाद आगमो मे सर्वत्र व्याप्त है। आगमो मे सर्वत्र जीवन-स्पर्शी विचारो का प्रवाह परिलक्षित होता है। विचार और आचार के जो मूल तत्त्व आगमो मे हैं, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका ग्रन्थो में उन्ही का विस्तार आचार्यो ने अपने-अपने युग की आवश्यकताओ के अनुसार किया है।

निर्युक्ति-युग

	निर्युक्ति	निर्युक्तिकार
१	आवश्यक	आचार्य भद्रबाहु
२	दशवैकालिक	,,

परिशिष्ट

मूल आगम

अङ्ग

१ आचार
२ सूत्रकृत
३ स्थान
४ समवाय
५ व्याख्या-प्रज्ञप्ति
६ ज्ञाता-धर्म कथा
७ उपासक दशा
अन्तकृद् दशा
९ अनुत्तरौपपातिक दशा
१० प्रश्न व्याकरण
११ विपाक
१२ दृष्टिवाद (विलुप्त)

उपांग

१ औपपातिक
२ राजप्रश्नीय
३ जीवाभिगम
४ प्रज्ञापना
५ सूर्य प्रज्ञप्ति
६ चन्द्र प्रज्ञप्ति
७ जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति
८ कल्पिका
९ कल्पावतंसिका
१० पुष्पिका
११ पुष्प चूलिका
१२ वृष्णिदशा

मूल

१ दशवैकालिक
२ उत्तराध्ययन
३ आवश्यक
४ पिण्ड-निर्युक्ति
अथवा
ओघ-निर्युक्ति

चूलिका

१ नन्दी
२ अनुयोग द्वार

छेद

१ निशीथ
२ महानिशीथ
३ बृहत्कल्प
४ व्यवहार
५ दशाश्रुत स्कन्ध
६ पञ्चकल्प

प्रकीर्णक

१ चतुःशरण
२ आतुर प्रत्याख्यान
३ महाप्रत्याख्यान
४ भक्त-परिज्ञा
५ संस्तारक

६ तन्दुल वैचारिक
७ देवेन्द्र स्तव
८ गच्छाचार
९ गणि-विद्या
१० मरण-समाधि,

आगम-युग

आगमो की भाषा अर्ध मागधी है। जैन अनुश्रुति के अनुसार तीर्थङ्कर अर्ध मागधी मे देशना करते है। अत इसको देव-वाणी भी कहा गया है। अर्ध मागधी भाषा को बोलने वाला भाषार्य कहा जाता है। यह भाषा मगध के अर्ध भाग मे बोली जाती थी। इसमे अट्ठारह देशी भाषाओ के लक्षण मिश्रित है। महावीर के शिष्य—मगध, मिथिला, काशी, कौशल आदि अनेक देशो के थे। अत आगमो की भाषा मे देश्य शब्दो की प्रचुरता है। चूर्णिकार जिनदास महत्तर की व्याख्या के अनुसार .गधो और देश्य शब्दो का मिश्रण अर्ध मागधी है।

आगम-युग का काल-मान, लगभग विक्रम पूर्व ४७ से प्रारम्भ होकर एक हजार वर्ष तक जाता है। वैसे किसी न किसी रूप मे, आगम-युग की परम्परा वर्तमान मे चल रही है।

जैन परम्परा के अनुसार आगमो के प्रणेता अर्थ-रूप मे तीर्थङ्कर और शब्द-रूप मे गणधर होते हैं। महावीर की वाणी का सार उनके गणधरो ने शब्द-बद्ध किया। फलत अर्थागम के प्रणेता तीर्थङ्कर और शब्दागम के प्रणेता गणधर। परन्तु आगमो का प्रामाण्य गणधरकृत होने से नही, अपितु तीर्थङ्कर वाणी होने से माना जाता है।

आगमो की सख्या कितनी है? इस विषय मे एक मत नही है। आगमो की सख्या के सम्बन्ध मे इस प्रकार की धारणा है—८४, ४५, ३२।

आगमो मे धर्मद, र्शन, सस्कृति, तत्त्व, गणित, ज्योतिष, खगोल, भूगोल और इतिहास—सभी प्रकार के विषय यथाप्रसग आ जाते हैं। फिर भी मुख्यता, धर्म, दर्शन, सस्कृति, साधना और तत्त्व की रहती है। अध्यात्म-वाद आगमो मे सवत्र व्याप्त है। आगमो मे सवत्र जीवन-स्पर्शी विचारो का प्रवाह परिलक्षित होता है। विचार और आचार के जो मूल तत्त्व आगमो मे ह, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका ग्रन्थो मे उन्ही का विस्तार आचार्यो ने अपने-अपने युग की आवश्यकताओ के अनुसार किया है।

निर्युक्ति-युग

निर्युक्ति	निर्युक्तिकार
१ आवश्यक	आचार्य भद्रबाहु
२ दशवैकालिक	,,

६	विशेपावश्यक	,,
७	दशवैकालिक	,,
८	उत्तराध्ययन	,,
९.	ओघ	,,
१०	पिण्ड	,,

निर्युक्तियो की व्याख्या पद्धति बहुत ही गूढ और सक्षिप्त थी। किसी भी विपय का विस्तार से विचार उसमे नही था। अत विस्तार की आवश्यकता ने भाप्यो का आविष्कार किया। निर्युक्तियो के गूढ़ अथ को प्रकट करने के लिए आचार्यो ने विस्तृत टीका लिखना आवश्यक समझा। निर्युक्तियो के ऊपर जो पद्यात्मक टीकाएँ लिखी गई, वे भाष्य के रूप मे प्रसिद्ध हैं। भाष्यो की भाषा भी प्राकृत ही है।

आवश्यक-सूत्र पर तीन भाष्य है—मूल-भाष्य, भाष्य और विशेपावश्यक भाष्य। प्रथम के दो सक्षेप मे है और तीसरा विस्तार मे।

भाष्यो का समय लगभग चौथी-पाँचवीं शताब्दी माना जाता है। भाष्यो की भापा प्राञ्जल है। भाष्यकार अनेक हुए है। किन्तु उल्लेख दो भाष्यकारो का ही मिलता है—सघदास गणि और जिन भद्र क्षमा श्रमण। आगम प्रभाकर श्री पुण्य विजय जी के विचारानुसार कम से कम चार भाष्यकार हुए हैं। उनमे दो का नाम तो उपलब्ध है और शेप दो का उल्लेख नही मिलता। पण्डित दलसुख जी निशीथ भाष्य के प्रणेता के रूप मे सिद्धसेन क्षमाश्रमण को मानते हैं।

चूर्णि-युग

	चूर्णि	चूर्णिकार
१	आवश्यक	आचार्य जिनदास महत्तर
२	आचाराग	,,
३	सूत्रकृताग	,,
४	दशवैकालिक	,,
५	उत्तराध्ययन	,,
६	नन्दी	,
७	अनुयोगद्वार	,,
८	व्याख्या-प्रज्ञप्ति	,,
९	जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति	,,
१०	जीवाभिगम	,,
११	निशीथ	,,
१२	महानिशीथ	,

जवणिया	पर्दा
दसद्ध	पाच
नट्टुल्लग	नृत्य
मट्ठी	आधार
पोट्ट	पेट
पयान	प्रधान
निडाल	ललाट
णिंदू	बांझ
डिंभ	शिशु
महेलिया	महिला
चंगेरी	फूलो की डलिया।
हुंड	बेडौल
गामिया	ग्वाला
लउग	बन्दर
आहिवच्च	आधिपत्य
वेसदार	वेश्या
खिप्पामेव	शीघ्र ही
देवाणुप्पिय	देवो को प्रिय
हडाहड	बहुत अधिक
वग्गुरा	समूह
माउग्गाम	स्त्री
मुंडिभ	युग
वुग्गह	कलह
मेरा	मर्यादा
मोय	मूत्र
दोगच्च	दरिद्रता
तुप्प	घी
डहर	बालक
गोर	गोधूम = गे'
गोणी	बोरी

निर्युक्तियो के कुछ विशिष्ट शब्द

शब्द	अर्थ
लंच	घूस

आयमणी	लुटिया
मन्नु	क्रोध
सरडू	गुठली रहित फल
कोनाली	गोष्ठी
वाहु	नाश
सभलि	दूती
वोद	मूर्ख
रकडुय	मृतक भोजन
सगिल्ल	समूह
खरिका	गर्दभी
खरिका-मुखी	दासी
किढग	वृद्ध
मरुग	ब्राह्मण
किढी	स्थविर
तालायर	नट
उम्मरी	देहली
वेट्टिका	राजकन्या
वोद्द	तरुण

चूर्णियो के कुछ विशिष्ट शब्द

शब्द	अर्थ
गोधम्म	मैथुन
सीता	श्मशान
खट्टिक	खटीक जाति
लोमसी	ककडी
इलय	छुरी
रिणकठ	पानी का किनारा
अद्धाणकप्प	रात्रि भोजन
सइज्झिय	पडौसी
पाइल्लग	फावडा
चिलिचिल्ल	आर्द्र
तच्चणिय	बौद्ध भिक्षु

भाषा विज्ञान

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी आगमो का अध्ययन परम आवश्यक है। आगम, निर्युक्ति, भाष्य र चूर्णि—इन चारो युगो में प्राकृत-भाषा मे बहुत परिवर्तन हुआ है। यहाँ पर केवल कुछ शब्दो का दिशा-दर्शन दिया गया है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि मे यदि आगम और उसके व्याख्या-साहित्य की त-बीन की जाए, तो बहुत से तथ्य प्रकट हो सकते हैं। उक्त साहित्य में प्राचीन शब्द प्रचुर मात्रा उपलब्ध हो सकते हैं, जिनका आज की भाषा मे व्यवहार नही होता है।

★